"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस, खपाटिया चकला-सूरतमें
मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

भूमिका।

यह ग्रन्थ त्रिभंगीसार केवल ७१ गाथाओंका है। परन्तु इसमें श्री तारणतरण स्वामीने जीवोंके कल्याण हेतु बहुत उपयोगी कथन किया है। कर्मबन्धके कारण सूक्ष्म भावोंको इतनी उत्तम रीतिसे बताया है कि जो उन पर मनन करेगा वह अवश्य आस्रवके कारण भावोंसे बचनेका उपाय करेगा। आस्रवके ३६ त्रिभंगीदल बहुत उपयोगी लिखे है। एक एक दल तीन तीन भावोंका है। फिर आस्रवके विरोधक व कर्मके क्षयके कारक २० त्रिभंगीदलोंको बताया है। इनमें निश्चय मोक्षमार्गका अनुभव करने योग्य संग्रह है–बहुत ही कल्याणकारी है। ग्रंथ छोटा होनेसे नमुना देनेकी आवश्यक्ता नहीं। पाठकगण थोडासा पढ़नेसे ही इस तत्वसंग्रहके महत्वको समझ जायगे। श्री तारण स्वामीने प्राचीन जैन सिद्धातके अनुकूल ही सर्व कथन किया है। हमको इसका हिन्दीमें भाव लिखते हुए बहुत ही आनन्दका लाभ हुआ। हम ग्रन्थकर्ताके तत्वविचारकी भूरि भूरि प्रशसा करते है। स्वामी अपने समयमें जैन सिद्धातके आध्यात्मीक विद्वान व त्यागी थे। स्वामीका जन्म संवत् १५०५ में व स्वर्गवास स० १५७२ में हुआ था। यह ग्रन्थ जगतभरके मानवोंके लिये उपकारी बनेगा। दिगम्बर व श्वेताबर सर्व जैनोंको तो मनन करना ही चाहिये।

हमको भाई मथुराप्रसादजी बजाज सागरसे तीन लिखित पुस्तकें हालकी लिखी मिली। प्राचीन प्रतियोंके लिये हमने बारबार मथुराप्रसादजीको व तारण समाजके मुखिया धर्मात्मा भाई गुलाबचंदजी ललितपुरको लिखा कि प्राचीन प्रति १६०० संवतके अनुमानकी लिखित भेजें परन्तु कोई महाशय भेज न सके, तब बहुत सम्हालकर गाथाएं शोध कर लिखी है। प्राचीन प्रतिसे मिलान करने पर कहीं भूल हो तो दूसरी आवृत्तिमें सुधार की जावे। तारणतरण समाजको उचित है कि श्री तारणतरण स्वामीके आध्यात्मीक साहित्यका भले प्रकार प्रचार करें।

आश्विन सुदी ६ वीर संवत २४६३
रविवार ता० १–१०–१९३७

जिनतत्वप्रेमी–
ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

विषय-सूची ।

अध्याय दूसरा–त्रिभङ्गी आस्रवदल भाव निरोधन भाव।

शुद्धाशुद्धि-पत्र।

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
३	८	तब जो बांधे	तबजो न बांधे
६	७	६ काल	९ भंग
८	१४	बांछक	बाधक
१०	१३	शुभ भावसे	शुद्ध भावसे
१२	७	औदारिक काय	औदारिक मिश्रकाय
२३	अंत	पना स्थिति	वनस्पति
२४	८	पदार्थकी अपेक्षा	पदार्थोंको सर्वथा
२८	८	लोभ	लाभ
३०	६	द्रव्यलिंगी या	द्रव्यलिंगीका
३६	१६	सम्मति	सम्पत्ति
४०	४	नबूल	बबूल
४२	१३	करके	करने
४४	१६	निश्चित	मिश्रित
५१	१८	क्षयके पीछे	सबके पीछे
५४	१२	बांछा कर्म	बांधा कर्म
,,	१६	शरीर...	शरीर मात्र बालक, युवा, वृद्ध है
५५	१६	आगम	अगम
५५	१३	जीवन	जानना

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
५७	८	ठीक २ ही	ठीक २ नहीं
५९	१३	या शुद्धोपयोग	या शुभोपयोग
,,	१६	अभाव पूर्वक	भाव पूर्वक
६४	५	उपशम	अवश्य
८०	८	विषय कषाय	विषय कषायके त्यागमें
१०३	९	कामोंसे	अशुभ कामोंसे
१०३	१७	कर्मोंकी अनंत	कर्मोंकी अन्तः
१०८	१	३२	३९
१११	१७	अकेले	अगले
११३	७	भावोंकेप्राप्त है	भावोंको प्राप्त है
,,	८	देवके	फिर अर्हत देवके
११६	९	मलीनता नहीं	मलीनता
११७	१८	पांच द्रव्य	पांचद्रव्य अस्तिकाय
११९	१८	भेद कषाय	मंद कषाय
१२१	१६	अनुमति	अनुभूति
१२९	१०	लक्षणको	लक्ष्यको
१२६	१२	अतिव्याप्ति	अतिव्याप्ति आदि
१३४	४	५ मिश्र	५ मिथ्यात्व
,,	६	,,	,,

श्री तारणतरणस्वामी विरचित—

त्रिभंगीसार।

मङ्गलाचरण।

परम शुद्ध परमातमा, परम ज्ञान बल ईश।
परमानन्द महोदधी, सिद्ध नमूं नित शीश॥ १॥

अथ श्री तारणतरणस्वामी विरचित त्रिभंगीसारका भाव लिखा जाता है— (प्रारम्भ ता० १-६-३७)

ग्रन्थकारका मंगलाचरण व प्रतिज्ञा।

नमस्कृत्य महावीरं, भवोद्भवविनाशनं।
त्रिभंगीदलं प्रोक्तं, आस्रवनिरोधकारणं॥ १॥

अन्वय सहित अर्थ—(भवोदभवविनाशन) संसारके जन्मोंको नाश करनेवाले (महावीर) श्री महावीर भगवानको (नमस्कृत्य) नमस्कार करके (आस्रवं निरोधकारणं) कर्मोंके आस्रवके निरोधके लिये (त्रिभंगीदलं प्रोक्तं) तीन २ भगके समूह पदोंको कहता हूं।

भावार्थ—श्री तारणस्वामीने अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवानको नमस्कार किया है। क्योंकि उन्होंने उन सर्व कर्मोंका क्षयकर डाला है, जिन कर्मोंके फलसे संसारमें पुनः पुनः जन्म होता है। फिर

स्वामीने प्रतिज्ञा की है कि भव्यजीवोंका भी कर्मोंका आस्रव निरोध हो, वे भी तत्वको जानकर मोक्ष-पथगामी बनें, इसलिये त्रिभंगीसार नामके ग्रन्थको मैं कहूंगा, जिसमें तीन तीन पदोंको देकर तत्वका कुछ स्वरूप समझाया जायगा।

आयु कर्मका बन्ध त्रिभागमें।

त्रिभंगी दल समूहं, जिन उक्तं जिनागमे।
आयु त्रिभागं कृत्वा, त्रिभंगी त्रिति अस्ति तं ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(जिनागमे) जिनवाणीमें (जिन उक्तं) जिनेन्द्रका कहा गया (त्रिभंगी दल समूहं) तीन भंगोंके अनेक दल समूह हैं (आयु त्रिभागं कृत्वा) आयुकी स्थितिके तीन भाग करके (त्रिभंगी त्रिति अस्ति त) त्रिभंगीका तीसरा भाग कहा जाता है।

भावार्थ— जिनागम द्वादशांग वाणी बहुत विशाल है, उसमें तीन तीन बातोंके अनेक समूह हैं। उनमेंसे प्रयोजनवश विशेष उपकारी जानकर तीन तीन बातोंको लेकर कुछ त्रिभंगोंका कथन यहां किया जाता है। पहले आयुकर्मके त्रिभागोंका वर्णन करते हैं—

आयोघां जिन उक्तं, वर्ष षष्टानि निश्चये।
भव्यात्मा हृदये चिंते, त्रिभंगी दलमास्तिं ॥ ३ ॥
तस्यास्ति त्रिविधिं हत्वा, दशा त्रितिय उच्यते।
मूहुत जिनं उक्तं, तस्यास्ति समयत्रियं ॥ ४ ॥

(नोट—तीन प्रतियोंके मिलानेसे जो पाठ ठीक बैठा है वह लिखा है। पुरानी प्रति न मिलनेसे शंका रह गई है। भाव जो भाषा है यह लिखा जाता है।)

अन्वयार्थ—(आयोषा जिनं उक्त) जिनेन्द्रने आयुकर्मका जो काल कहा है (वर्ष षष्ठानि निश्चये) यदि किसीकी आयु ६० साठ वर्षकी निश्चय की जावे (भव्यात्मा हृदये चिंते) भव्य जीव इसके सम्बन्धमें मनमें विचार करे (त्रिभंगी दलमास्तिं) इसके तीन भाग करने चाहिये (तस्यास्ति त्रिविधि हृत्वा) उसको तीनसे भाग देना चाहिये (दशा त्रितिय उच्यते) तब जो तीसरा भाग रह जायगा (मुहूर्त जिनं उक्तं) उस समय एक अन्तर्मुहूर्त आयु बन्धका समय जिनेन्द्रने कहा है (तस्यास्ति समय त्रिय) इसके भी तीन भाग करते जाना चाहिये।

भावार्थ—कर्मभूमिके मनुष्य व तिर्यंचकी आयुके बन्धकी रीति यह है कि जितनी आयु हो उनके तीसरे भाग शेष रहनेपर एक अन्तर्मुहूर्तके लिये आगामी आयुके बन्धका काल आता है, तब जो बांधे तो फिर शेष आयुका तीसरा भाग करनेपर फिर दूसरीवार एक अन्तर्मुहूर्तके लिये आयुके बन्धका काल आयगा फिर भी न बन्धे तो फिर तीसरे भाग शेष रहनेपर, इस तरह आठ दफे त्रिभाग करनेपर आयुके बन्धका अन्तर्मुहूर्तके लिये समय आयगा। जैसे किसीकी आयु ६० वर्षकी है तो इसके आठ त्रिभाग इस तरह पर होंगे।

१	पहला		२० वर्ष शेष रहनेपर
२	दूसरा		६ वर्ष ८ मास शेष रहनेपर
३	तीसरा		२ वर्ष २ मास २० दिन शेष रहनेपर
४	चौथा	०	८ मास २६ दिन १६ घण्टे शेष रहनेपर
५	पांचवा	०	२ मास २८ दिन २१ घण्टे २० मिनट शेष रहनेपर
६	छट्ठा	० ०	२९ दिन १५ घण्टे ६ मिनट ४० सिकंड शेष रहनेपर
७	सातवा	० ०	९ दिन २१ घण्टे २ मिनट १३ १/३ ,, ,,
८	आठवा	० ०	३ दिन ७ घण्टे ० ,, ४४ ४/९ ,, ,,

यदि आठवां विभाग १ वर्ष या २ वर्षका माने तो आठ विभाग इस प्रमाण होंगे—

तीन तीन पदार्थ रचे गये हैं (भव्यात्मा भावं चिन्तनं) भव्यजीवको उन भावोंको विचारना चाहिये (शुद्धात्मा पर सुद्ध) सम्यग्दृष्टीको उत्कृष्ट शुद्ध परमात्माके स्वरूपका अनुभव करना चाहिये।

भावार्थ—आस्रवोंके भावोंको जानकर उनका त्याग करना चाहिये। आस्रवोंसे भिन्न अपने शुद्ध स्वभावका मनन करना ही हितकर है।

१०८ जीवाधिकरण।

त्रिभंगी प्रवेस प्रोक्तं, भावं सय अठोत्तरं।
मिथ्यात भय संपूर्णं, रागादि मल पूरितं ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ— त्रिभंगी प्रवेस) तीन भंगोंको लेकरके (मिथ्यात भय संपूर्णं) मिथ्यादर्शनसे पूर्ण (रागादि मल पूरितं) राग द्वेषादि मलसे भरे हुए (सय अठोत्तर भावं) एकसोआठ १०८ आस्रवके जीवाधिकरण रूप भाव (प्रोक्त) कहे गए हैं।

भावार्थ—जिन जीवोंके भावोंके आधारसे कर्म आते हैं वे मूल भाव १०८ एकसौआठ हैं। जैसा श्री तत्वार्थसूत्रमें कहा है—

आद्य संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८–६ अ०।

१-संरम्भ २-समारम्भ, ३—आरंभ। इन तीनको मन वचन काय तीन योगोंसे गुणा करनेसे नौ भाव हुए। इन नौको कृत, कारित, अनुमति इन तीनसे गुणा करने पर सत्ताईस भेद हुए। हरएक सत्ताईस भावको क्रोध, मान, माया, लोभ, चार कषायोंसे गुणा करने पर १०८ भाव होते हैं।

किसी कार्यको करनेका संकल्प या मन्तव्य करना संरम्भ है। उसके लिये सामग्री एकत्र करना समारंभ है। उस कामको करने लगना आरंभ है।

अपने भावको मनमें करना मन संरम्भ है, वचनसे प्रगट करना वचन संरम्भ है, कायसे संकेत करके बताना काय संरम्भ है। इसी तरह मन वचन कायसे समारंभ व आरंभ भी होता है। इन नौ प्रकारके भावोंको यातो स्वयं काम करनेके लिये, या किसीसे करानेके लिये, या सम्मति देनेके लिये करनेसे सत्ताईस भेद होजाते हैं। हरएक भाव मन वचन कायके द्वारा चारों कषायोंमेंसे किसी कषायके

द्वारा होता है, इसलिये १०८ भाव होजाते हैं। जैसे हिंसा करनेके भाव क्रोधवश किसीने किये तब मन वचन कायसे संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ करनेसे नौ भाव करनेके अभिप्रायसे हुए। क्रोधवश हिंसा करानेके भाव मन वचन कायसे संरम्भ समारम्भ आरम्भ करनेसे हुये, तब नौ भाव करानेके अभिप्रायसे हुये। फिर क्रोधवश हिंसाके लिये सम्मति देनेके लिये संरम्भ, समारंभ, आरंभको मन वचन कायसे करनेसे नौ भाव अनुमतिके अभिप्रायसे हुए। इसतरह कृत नौ + कारित नौ + अनुमति नौ = २७ भाव क्रोधके वश होगए।

नौ अनुमति भावोंके ६ काल क्रोधवश नीचे प्रकारके होंगे—

(१) यदि मेरेशत्रुका कोई विनाशका विचारकरें तो अच्छा है—मन संरम्भ अनुमति।
(२) यदि ,, ,, ,, ,, ,, तो अच्छा है ऐसा वचन कहना—वचन संरम्भ अनुमति।
(३) यदि ,, ,, ,, ,, ,, ,, ऐसा कायसे संकेत करना—काय संरम्भ अनुमति।
(४) यदि मेरे शत्रुके मारनेके लिये शस्त्र लायाजावे तो अच्छा है—मन समारम्भ अनुमति।
(५) ,, ,, , ,, ,, ,, ,, ऐसा वचन कहना वचन समारंभ अनुमति।
(६) ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ऐसा कायसे संकेतकरना कायसमारंभ अनुमति।
(७) यदि मेरे शत्रुको नाशकर डाले तो अच्छा है—ऐसा विचारना—मन आरंभ अनुमति।
(८) ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ऐसा वचन कहना—वचन आरंभ अनुमति।
(९) ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ऐसा कायसे संकेत—काय आरंभ अनुमति।

मन वचन कायसे संरम्भ समारम्भके अनुमतिके ९।

१०८ प्रकारके भावोंसे कर्मोंका आस्रव होता है, यह संसारवर्द्धक घोर पापका बन्ध करता है। सम्यग्दृष्टीके अनन्तानुबंधी कषाय नहीं होती है। इससे वैसे गाढ़ भाव नहीं होते हैं। सम्यक्तीकी क्रिया ज्ञानपूर्वक होती है। मिथ्यात्वीकी क्रिया अज्ञान पूर्वक होती है। तौ भी जहांतक कषाय सम्बन्धी कुछ भी विकार मन, वचन, काय द्वारा होगा वहांतक कर्मोंका बन्ध पड़ेगा। ये आस्रव त्यागने योग्य हैं ऐसा भाव ज्ञानीको करना योग्य है। यदि शुभ काम करनेमें प्रवृत्ति होगी तो मुख्यतासे पुण्यकर्मका आस्रव होगा।

सम्यग्दर्शनकी भावना आस्रव निरोधक है ।

त्रिभंगि निरोधनं कृत्वा, सम्यक्ते सुद्ध भावना ।
भव्यात्मा चेतना रूपं, सम्यग्दर्शनमुत्तमं ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(त्रिभंगि) तीन भंग जो आस्रवोंके कहेंगे (निरोधनं कृत्वा) उनको रोक करके (सम्यक्ते) सम्यग्दर्शनमें (सुद्ध भावना) शुद्ध भावना करनी चाहिये (भव्यात्मा) भव्य जीवकी आत्मामें (चेतना रूपं) चेतन स्वरूपका अनुभव होना वही (उत्तमं सम्यग्दर्सनं) उत्तम या निश्चय सम्यग्दर्शन है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन सहित सर्व ही भाव संसारके कारण कर्म बन्धके कारक हैं । इसलिये मिथ्यात्व सहित सर्व भावोंको निरोध करके सम्यग्दर्शनकी भावना करनी चाहिये । यद्यपि व्यवहार सम्यग्दर्शन परमार्थ आप्त, आगम, गुरुके श्रद्धानको या जीवाजीवादि सात तत्वोंके श्रद्धानको कहते हैं तथापि निश्चय सम्यग्दर्शन आत्माका निज स्वभाव है । जहां निज शुद्ध आत्माका अनुभव किया जावे वहीं निश्चय या उत्तम सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दर्शनका लाभ होना ही आश्रवोंके निरोधका उपाय हाथ लग जाना है । सम्यक्ती परम वैरागी होता है, वह मोक्ष स्वरूप शुद्धात्माका ही प्रेमी होजाता है, उसकी पीठ संसारकी तरफ होजाती है । वह विषय सुखका निस्पृही किंतु अतीन्द्रिय सुखका प्रेमी होजाता है । कर्मोदयजन्य भोगोंको अनासक्तिसे करते हुए उसके विशेष निर्जरा होती है । उसके सामने बन्ध बहुत अल्प होता है जो शीघ्र छूट जानेवाला है । सम्यक्तीके मन, वचन, काय द्वारा जितने काम होते हैं वे सब कर्मकी प्रेरणावश उसकी श्रद्धासे किये करने योग्य हैं, नहीं होते हैं । इसलिये उसका अल्प बन्ध भी छूट जानेवाला है । चक्रवर्ती छः खण्डका राज्य करनेवाला भी सम्यग्दृष्टी अल्प कर्म बन्ध करता है जब कि एक धनहीन मिथ्यादृष्टी तृष्णासे गृसित बहुत अधिक कर्म बन्ध करता है । समयसारकलशमें कहा है—

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि । सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥ २२ ॥

भावार्थ—ज्ञानीके सर्व ही भाव ज्ञानसे बने हुए होते है । अज्ञानीके सर्व ही भाव अज्ञानसे बने हुए होते हैं । संसारका वर्द्धक अज्ञान है, संसारका छेदक सम्यग्ज्ञान या आत्मज्ञान है ।

अध्याय पहला।

त्रिभंगी प्रवेस भाव।

(१) शुभ, अशुभ, मिश्र-तीन।

सुहस्य भावनं कृत्वा, असुह भाव तिष्ठते।
मिश्र भाव च मिथ्यात्वं, त्रिभंगी दल संजुतं ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(सुहस्य भावन कृत्वा) शुभकी भावना करनेसे शुभ भाव होता है (असुह भाव तिष्ठते) अशुभ भावमें ठहरनेसे अशुभ भाव होता है (मिश्र भाव च मिथ्यात्वं) मिथ्यात्व व सम्यक्तसे मिला हुआ मिश्रभाव होता है (त्रिभंगी दल संजुतं) ऐसे तीन प्रकारके भाव कर्मास्रवके कारण हैं।

भावार्थ—यहां आत्माके तीन भाव सूक्ष्मदृष्टिसे बताए हैं। सम्यक्त पूर्वक जो मन्द कषाय रूप भाव होते हैं उनको शुभ भाव कहते हैं। वे शुद्धात्माकी भावना सहित हैं। शुद्ध स्वरूपमें रूचिरूप हैं। वे भाव यद्यपि पुण्यबन्धके कारक हैं तथापि मोक्षमार्गमें बाधक न होकर साधक हैं। मिथ्यादृष्टीके भी मन्द कषाय रूप शुभ भाव होते है वे यद्यपि यहांतक पुण्य बांधते हैं कि द्रव्यलिंगी मुनि नव ग्रैवेयिक तक जाकर अहमिंद्र होजाते है तथापि यह पुनः साधारण मानव हो भव भ्रमणकारी भावोंमें फँस जाता है, उसका पुण्य मोक्षमार्ग वांछक है। इसलिये वह वास्तवमें अशुभ है, पुण्य बन्धकी अपेक्षा शुभ है परन्तु मोक्षमार्ग न होनेसे वह अशुभ ही है। मिथ्यादृष्टी पापानुबन्धी पुण्यकर्म बांधता है जो परम्पराय पापके कारण हैं। सम्यग्दृष्टी पुण्यानुबन्धी पुण्यकर्म बांधता है, परम्पराय पुण्यबन्धके कारण होते हुए मोक्षमें सहकारी है।

श्री जयसेनाचार्य समयसारकी व्याख्यामें निर्जरा अधिकारमें गाथा २४२से २४५ की व्याख्यामें कहते हैं—

कोऽपि जीवोऽभिनवपुण्यकर्मनिमित्तं भोगाऽकांक्षानिदानरूपेण शुभकर्मानुष्ठानं करोति सोऽपि पापानुबन्धिपुण्यराजा कालांतरे भोगान् ददाति। तेऽपि निदानबन्धेन प्राप्ता भोगा रावणादिवन्नरकादिदुःखपरंपरां प्रापयन्तीति। कोऽपि सम्यग्दृष्टीर्जीवो निर्विकल्पसमाधेरभावात्, अशक्यानुष्ठानेन विषयकषायवंचनार्थं यद्यपि व्रतशीलदानपूजादिशुभकर्मानुष्ठानं करोति तथापि भोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन तत्पुण्यकर्मानुष्ठानं न सेवते। तदपि पुण्यानुबंधिपुण्यकर्म भवांतरे तीर्थंकर–चक्रवर्ती–बलदेवाद्यभ्युदयरूपेणोदयागतमपि पूर्वभवभावितभेदविज्ञानवासनाबलेन शुद्धात्मभावनाविनाशकान् विषयसुखोत्पादकान् भोगाकांक्षानिदानरूपान् रागादिपरिणामान्न ददाति, भरतेश्वरादीनामिव।

भावार्थ—जो कोई जीव नवीन पुण्य कर्मके निमित्त भोगोंकी इच्छारूप निदान बन्धसे शुभ कर्म करता है वह पापानुबन्धी पुण्य कर्म बांधता है, वह कर्मरूपी राजा भावी कालमें भोगोंको देता है, परन्तु निदानसे प्राप्त वे भोग रावणादिके समान नरकादिके दुःख परम्पराको प्राप्त करा देते हैं। जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव होता है वह निर्विकल्प समाधिके न पानेपर असमर्थ होकर विषय कषायसे बचनेके लिये यद्यपि व्रत, शील, दान, पूजादि शुभ कर्म करता है तथापि भोगाकांक्षारूप निदान बन्धसे उस पुण्य कर्मको नहीं करता है। इससे वह पुण्यानुबन्धी पुण्यकर्म बांधता है। वह पुण्यकर्म आगामी भवमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदिका ऐश्वर्य देता हुआ उदय होता है। तौभी पूर्वजन्ममें भावित भेदविज्ञानकी वासनाके बलसे विषयसुख बढ़ानेवाले भोगाकांक्षारूप निदान रूपके रागादि भावोंको नहीं पैदा करता है। श्री भरतेश्वर आदिके समान।

मिथ्यात्व कर्मके उदय सहित जितने भाव हैं वे सब वास्तवमें अशुभ हैं। मन्द कषायरूप शुभ भावोंसे यद्यपि असाता वेदनीयादि पाप प्रकृतियोंका बन्ध न होकर साता वेदनीयादि पुण्य प्रकृतियोंका बन्ध होता है तथापि मिथ्यात्वका बन्ध अवश्य होता है। अतएव विष मिले सुन्दर भोजनके समान ये शुभ भाव भी वास्तवमें अशुभ हैं। मिथ्यात्वीकी सर्व शुभ व अशुभ क्रिया मोक्षमार्गसे विपरीत है। इसलिये वह अशुभ कही गई है।

सराग सम्यग्दृष्टीके भी नीची श्रेणीमें कभी अशुभ लेश्यासे पाप कर्मका बन्ध होता है अशुभो-

पयोग होजाता है। परन्तु सम्यक्तके साथ होनेसे वह बाधक नहीं होता है। तीव्र कषायकी अपेक्षा अशुभ है, परन्तु सम्यक्त सहित होनेसे शुभ है।

तीसरा मिश्र भाव—मिश्र गुणस्थानमें होता है जहां सम्यक्त मिथ्यात्व मिश्र मोहनीय कर्मका उदय होता है। यह भाव दधि गुड़के मिले स्वादके समान सत्य असत्य श्रद्धानसे मिले हुए केवली गम्य भाव है, जो अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं ठहरता है। फिर वह जीव इन भावोंसे यातो मिथ्यात्वमें आता है या फिर सम्यक्तमें चला जाता है। इससे यह तीसरे ही प्रकारके मिश्रभाव हैं। उनके होनेपर जो आस्रव होता है वह मिश्रभाव कृत आस्रव है। यहां जिस अपेक्षासे गाथामें कहा है उसका भाव यह है कि मिथ्यात्व व सासादन गुणस्थानके सर्व भाव मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायके उदय सहित होनेसे अशुभ भाव है। तीसरे मिश्र गुणस्थानके भाव मिश्र हैं, चौथे अविरत सम्यक्तसे लेकर दशवें सूक्ष्म लोभ तक शुभ भावोंका सहयोग है जिनसे कर्मोंका आस्रव व बंध होता है। ग्यारह, बारह, तेरह गुणस्थानोंमें कषाय नहीं है, सांपरायिक आस्रव नहीं है। केवल ईर्यापथ आश्रव है। इससे एक समयकी स्थितिवाला कर्म बन्धता है। सातावेदनीयके आस्रव व बन्धकी अपेक्षा इसको भी शुभ भावमें लेसक्ते हैं। अतएव यह सिद्ध है कि आस्रवके कारण तीन ही प्रकारके भाव हैं—शुभ भाव, अशुभ भाव, मिश्रभाव। शुभ भावसे कर्मास्रव नहीं होता है। कर्मोंके आस्रव व बन्धमें योग व मोह कारण है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, रत्नत्रयधर्म आस्रव व बन्धका कारण नहीं है। ये भाव तो संवर निर्जराके ही कारण हैं। अतएव रत्नत्रय धर्मका भाव बढ़ाना चाहिये व रागद्वेष मोहका त्याग करना चाहिये, यह गाथाका तात्पर्य है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य। आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः॥ २२०॥

भावार्थ—रत्नत्रय तो निर्वाणका ही कारण है बन्धका कारण नहीं है, रत्नत्रयको साधते हुए जो पुण्य कर्मोंका आस्रव होता है वह शुभोपयोगका अपराध है।

(२) मन वचन काय-तीन भाव।

मनस्य. चिंतनं कृत्वा, वचनं विपरीत उच्यते।
क्रमनं कृत मिथ्यात्वं, त्रिभंगी दल स्मृतं॥ १॥

अन्वयार्थ—(मनस्य चिंतन कृत्वा) **मनमें विपरीत चितवन करना** (वचनं विपरीत उच्यते) **विपरीत वचन बोलना** (क्रमनं कृत मिथ्यात्व) **मिथ्यात्व सम्बन्धी आचरण कायसे करना** (त्रिभंगी दल स्मृतं) **ये मन वचन काय तीन आस्रवके बाधक कहे गये हैं।**

भावार्थ—कर्म वर्गणाओंके आस्रव या बन्धके सन्मुख होनेका मूल कारण योग है। योगके दो भेद हैं-भावयोग और द्रव्ययोग। आत्माकी एक स्वाभाविक शक्ति जो कर्म व नोकर्म पुद्गल वर्गणाओंको आकर्षण करती है उसको भावयोग कहते हैं। यह भावयोग वीर्यातराय कर्मके क्षयोपशम या क्षयसे व शरीर नामकर्मके उदयसे काम करता है। जब चौदहवें अयोग गुणस्थानमें शरीर नामकर्मका उदय नहीं होता है तब यह भावयोग काम नहीं करता है। तब कोई भी पुद्गल वर्गणाएँ खिचकर नहीं आती हैं। आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंदन या हिलना सो द्रव्ययोग है। मन वचन व कायका हलन चलन आत्माके प्रदेश परिस्पन्दका निमित्त कारण है। जिस समय मन वचन या कायसे कुछ भी काम होता है उसी समय आत्माके प्रदेश हिलते हैं व उसी समय भावयोग पुद्गलोंको खींच लेता है व बन्ध होजाता है।

यदि कषाय भाव होता है तब सांपरायिक आस्रव होता है। व स्थिति व अनुभाग पड़ता है। कषाय रहित उपशांत मोह, क्षीण मोह, सयोग केवलीके केवल योगके कारण ईर्यापथ आस्रव सातावेदनीका एक समयकी स्थिति सहित व बहु अनुभाग शक्ति सहित होता है, दूसरे समय उनकी निर्जरा होजाती है। सत्तामें कर्म वास नहीं करता है। कषाय सहित योगको ही लेश्या कहते हैं। लेश्यासे पुण्य व पाप कर्मका बन्ध होता है। कषाय रहितके योग होनेसे शुक्ल लेश्या मात्र कही जाती है। एक साथ मन, वचन, काय, तीनोंका काम नहीं होता है। एक योग एक समयमें काम करता है। योगोंका पलटना शीघ्र होजाता है। इन तीन योगोंके पन्द्रह भेद हैं-चार मनोयोग, चार वचन योग, सात काय योग।

सत्य, असत्य, उभय, अनुभय चार मनोयोग हैं। सत्य, असत्य, उभय, अनुभय चार वचन योग हैं। सत्यको मनसे विचारना व सत्य ही कहना सत्य मन व वचन है। असत्य ही विचारना व असत्य ही कहना असत्य मन व वचन हैं। सत्य व असत्य मिश्रितको विचारना व कहना उभय मन व वचन है। जिस किसी बातको सत्य या असत्य कुछ नहीं कह सके वह विचार या वचन अनुभय है, जैसे उसने क्या कहा था।

औदारिक काय, औदारिक मिश्रकाय, वैक्रियिक काय, वैक्रियिक मिश्रकाय, आहारक काय, आहारक मिश्रकाय, और कार्मण ये सात काय योग हैं। मनुष्य व तिर्यंचके पर्याप्त दशामें औदारिक व अपर्याप्त दशामें औदारिक काय योग होता है। कार्मण व औदारिकके मिश्रको औदारिक मिश्र कहते हैं। देव व नारकीके पर्याप्त दशामें वैक्रियिक व अपर्याप्त दशामें वैक्रियिक मिश्रकाय योग होता है। आहारक समुद्घातके समय छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके आहारक शरीर जब बनता है तब पर्याप्त दशामें आहारक काययोग व अपर्याप्त दशामें आहारक मिश्र माययोग होता है! औदारिकके साथ आहारक मिश्र होता है। विग्रह गतिमें व केवली समुद्घातमें प्रतर द्वय व लोक पूर्णमें कार्मण योग होता है। जबतक यह जीव चौदहवें गुणस्थानमें न पहुंचे अर्थात् सिद्धगतिके निकट न पहुंचे तबतक हरएक जागृत व सुप्त दशामें कोई न कोई योग होता ही है। कर्म या नोकर्मका आस्रव हुआ करता है। विग्रह गतिमें केवल कार्मण व तैजस वर्गणाओंका ही ग्रहण होता है। एकेंद्रियके केवल काययोग होता है, द्वेन्द्रियसे असैनी पंचेन्द्रिय तक काय और वचन योग होता है, सैनी पंचेन्द्रियोंके काय, वचन, मन तीनों योग होते हैं। जन्म लेनेपर एक अन्तर्मुहूर्त तक जीव अपर्याप्त रहता है, शरीर पर्याप्ति पूर्ण करनेपर पर्याप्त होजाता है। हमें यह निश्चय करना चाहिये कि मन, वचन, कायका हलन चलन कर्मोंके आस्रव व बन्धका मूल कारण है। जब मंद कषाय सहित मन, वचन, कायका परिणमन होता है तब उसको शुभ योग कहते हैं। जब तीव्र कषाय सहित मन वचन कायका परिणमन होता है तब उसे अशुभ योग कहते हैं। शुभ योगसे सातावेदनीय, उच्च गोत्र, शुभ नाम व शुभ आयुका आस्रव होगा। अशुभ योगसे असातावेदनीय, अशुभ नाम, नीच गोत्र व अशुभ आयुका आस्रव होगा। यद्यपि चार घातीय कर्म अशुभ हैं तथापि उनका आस्रव कषाय सहित शुभ या अशुभ योग दोनोंसे होगा। जब मंद कषायरूप शुभ योग होगा तब चार घातीय कर्ममें स्थिति व अनुभाग कम पड़ेगा, अशुभ योगमें स्थिति व अनुभाग अधिक पड़ेगा।

कर्म सिद्धांतकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टीको भी शुभ योग होकर पुण्यका बन्ध होता है। मोक्षमार्गकी अपेक्षा जिसको सम्यग्दर्शन नहीं है उसका सर्व ही मन वचन कायका परिणमन मोक्षमार्गमें बाधक होनेसे अशुभ ही है। यहां गाथामें मिथ्यात्व सहित मन वचन कायके वर्तनको त्रिभंगी दलमें लिया है। क्योंकि मिथ्यादृष्टीके ही संसारका कारणीभूत बन्ध होता है। तथा मिथ्यादृष्टीका सर्व ही मन वचन कायका वर्तन अज्ञानपूर्वक होता है। जब कि सम्यक्तीका सर्व ही मनवचनकायका वर्तन ज्ञानपूर्वक होता है। सम्यक्ती मोक्षमार्ग पर आरूढ़ है। उसकी गाढ़ रुचि स्वाधीनताके लाभकी ओर है या अनन्त सुखकी प्राप्तिपर है। सम्यक्ती कर्मोंके उदयवश मन वचन कायका वर्तन करता है। सम्यक्ती भीतरमे यही चाहता है कि मैं निरन्तर स्वानुभवमें ही मगन रहूँ। मन वचन कायसे कोई काम न करूं। इसलिये जलमें कमलके समान अलिप्तका मन वचन काय विपरीत नहीं होता है, किसी योग्य व न्यायोचित प्रयोजनवश होता है। इसलिये उसका वर्तन विशेष निर्जराका कारण है व अल्पबन्धका कारण है। समयसारकलशामें कहा है—

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि। सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥ २१-३ ॥

भावार्थ—ज्ञानीके सर्व ही भाव ज्ञानसे रचे हुए होते हैं जब कि अज्ञानीके सर्व ही भाव अज्ञानसे बने हुए होते हैं।

अशुभ मन होनेपर परकी हानिको विचारता है। ईर्षाभाव रखता है। क्रोधकी तीव्रता, मानकी तीव्रता, मायाकी तीव्रता, व लोभकी तीव्रतासे जूआ, मांस, मदिरा, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, असत्य भाषण, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म सेवनका विचार करता है। इन्द्रियोंके विषयोंकी लोलुपतावश इष्टमें रागभाव व अनिष्टमें द्वेषभावका विचार करता है। अशुभ वचनसे असत्य, कठोर, मर्म छेदी, पाप प्रचारक विषयोंमें रंजायमान व लीन करनेवाला व अहंकारका व परनिंदाका वचन बोलता है। परकी हानि हो ऐसी बातें बनाता है। परको ठगनेका जाल रचता है।

अशुभ कायसे वध बन्धन करता है, चोरी करता है, परस्त्री सेवन करता है, अशुभ कार्योंमें कायको लगाता है।

शुभ मन वचन कायके द्वारा ऊपरसे विरोधी शुभ भावना करता है, परका उपकार करता है, सत्य व मिष्टवचन बोलता है, दया धर्म पालता है, जप तप करता है, धर्मके पाठ पढ़ता है। तीर्थयात्रा

करता है, परके हितमें शक्ति लगाता है, मिथ्यादर्शन सहित मुनिव्रत भी पालता है। मिथ्यात्व सहित मन वचन कायकी सर्व शुभ व अशुभ क्रियाएँ विपरीत हैं–संसारवर्द्धक हैं। सम्यक्त सहित सर्व मन वचन कायकी क्रियाएं भी यदि अशुभ हों तो पाप व शुभ हों तो पुण्य वन्ध कारक हैं तथापि अनन्तानुबन्धी कषायके अभावसे संसारवर्द्धक नहीं हैं। प्रयोजन यह है कि मिथ्यात्वको उगलकर फेंक देना चाहिये। सम्यक्त पूर्वक भी मन वचन कायका वर्तन जहांतक होगा कर्मका आस्रव होगा। अतएव इनका निरोध करके तीन गुप्ति पालकर अपने शुद्धात्माकी गुफामें बैठकर स्वानुभव करना योग्य है। वीतरागता जितनी अधिक होगी उतना आस्रव कम रहेगा। तत्वार्थसारमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

कायवाङ्मनसां कर्म स्मृतो योग स आस्रवः। शुभ पुण्यस्य विज्ञेयो विपरीतश्च पाप्मन॰ ॥ २–४ ॥

सरस॰ सलिलावाहिद्वारमत्र जनैर्यथा। तदास्रवणहेतुत्वादास्रवो व्यपदिश्यते ॥ ३–४ ॥

आत्मानोऽपि तथैवैषा जिनैर्योगप्रणालिका। कर्मास्रवस्य हेतुत्वादास्रवो व्यपदिश्यते ॥ ४–४ ॥

भावार्थ—मन वचन कायका वर्तना योग है वही आस्रव है। शुभ योग पुण्यका व अशुभ योग पापका आस्रव करता है। जैसे सरोवरमें पानीके आनेके द्वारसे पानी आता है वैसे मन वचन कायके कार्यसे कर्मोंका आस्रव होता है। आत्माकी जो योगोंके चञ्चल होनेकी मोरी है उसीसे कर्मोंका आस्रव होता है इसी योगको आस्रव कहते हैं। समयसारकलशामें श्री अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्नमैकाग्र्यमेव कलयंति सदैव ये ते।

रागादिमुक्तमनस॰ सतत भवन्त पश्यंति बन्धविधुरं समयस्य सारं ॥ ८–४ ॥

भावार्थ–जो मन वचन कायको रोककर आत्मज्ञानको देनेवाले शुद्ध निश्चयनयका आलम्बन लेकर स्व रूपमें एकाग्र होजाते हैं वे निरंतर रागादि भावोंसे रहित होते हुए बन्ध रहित शुद्ध समयसार या शुद्धात्माका अनुभव करते हैं।

(३) कृत, कारित, अनुमति–ये तीन भाव।

कृतं असुद्ध कर्मस्य, कारितं तस्य उच्यते।
अनुमतिं तस्य उत्पाद्यन्ते, त्रिभंगी दल उच्यते ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—(अशुद्ध कर्मस्य कृतं) शुद्धोपयोगसे विरुद्ध अशुद्ध कामको स्वयं करना कृत है (तस्य कारित उच्यते) अशुद्ध कामको दूसरेसे कराना कारित है (अनुमति तस्य उत्पाद्यन्ते) अशुद्ध काममें सम्मति देना या सराहना करनी अनुमोदना है (त्रिभंगी दल उच्यते) इसको आश्रवका त्रिभंगी समूह कहा जाता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोगमें रमण करना ही आत्माका स्वहित है–संवरका कारण है, इससे छूटकर अशुद्धोपयोग होजाता है, चाहे शुभ हो या अशुभ हो। क्रोध, मान, माया, लोभके वशीभूत होकर यह प्राणी बहुतसे कामोंको स्वयं करता है, बहुतसे कामोंको दूसरोंसे कराता है, बहुतसे कामोंमें सम्मति देता है व दूसरोंके द्वारा किये गये कामोंकी प्रशंसा करता है। तीनों ही तरहसे कर्मोंका आस्रव होता है यह न समझना चाहिये कि स्वयं करनेसे अधिक होगा, कराने व अनुमोदनासे कम होगा। ऐसा कोई नियम नहीं है, जिस किसी कृत कारित व अनुमतिमें कषायभाव अधिक होगा वहां अधिक आस्रव होगा। कषायभाव कम होगा वहां कम आस्रव होगा। कषायकी तीव्र व मंदतापर अधिक व कम आश्रव निर्भर है।

एक राजा घरमें बैठा है स्वयं युद्ध नहीं करता है, परंतु वह युद्ध कराता है, उसकी आज्ञासे ही युद्ध होता है। उसको ही युद्धका बड़ा उत्साह है। इसलिये वह करनेवालोंसे अधिक पापका बन्ध करेगा। युद्ध करनेवाले यदि यह भाव रखते हैं कि हमारी स्वयं इच्छा इस युद्ध करनेकी न थी, परंतु राजाज्ञाको पालना पड़ता है तो करनेवाले योद्धाओंको राजाओंकी अपेक्षा कम बन्ध पड़ेगा। तीसरा एक मानव है, जो केवल युद्धकी बात सुनता है। सुनकर बड़ा ही रंजायमान होता है। युद्ध करानेवाले राजासे अधिक कषाय यदि अनुमोदना करनेवालोंमें होगी तो वह अनुमतिके कारण राजासे भी अधिक पापबंध करेगा। हिंसा करनेवाला, करानेवाला, व सम्मति देनेवाला तीनों हिंसक हैं। यदि कषाय समान होगी तो समान बन्ध होगा, कम व अधिक होगी तो कम व अधिक बन्ध होगा। अशुभ कार्योंको न तो करना चाहिये न कराना चाहिये न उनकी सम्मति देनी चाहिये न सराहना करनी चाहिये। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील

व परिग्रहका संग्रह ये पांच पाप अशुभ हैं। इनको न करना चाहिये न कराना चाहिये न इनकी अनुमोदना करनी चाहिये।

शुभ कार्योंको—दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग इन पांच व्रतोंको करना, कराना व अनुमोदना करनेसे पुण्यका आस्रव होगा। व्यवहारमें सदा ही शुभ कार्योंको ही करना चाहिये व कराना चाहिये व उनमें ही सम्मति देनी चाहिये। शुभ कार्योंका होना सुनकर हर्ष मानना चाहिये। इससे पुण्यका बन्ध होगा। एक सामायिक करता है, दूसरा सामायिक कराता है, तीसरा केवल सराहना करता है, तीनों धर्मात्मा हैं। हमें निरन्तर शुभ भावना रखनी चाहिये। शुभ सम्मति देनी चाहिये। शुभ कार्योंकी अनुमोदना करनी चाहिये।

एक मुनिको दान देता है, एक देनेवालेकी प्रशंसा करता है, दोनों समान पुण्यबन्ध कर सक्ते हैं, वे असमान भी कर सक्ते है। यदि दातारकी अपेक्षा प्रशंसाकारकके भावोंमें दानसे गाढ़ प्रीति है, दातारसे अधिक रुचि व श्रद्धा है तो दातारसे अधिक पुण्य प्रशंसकको होगा।

कृत कारित अनुमति तीनों ही शुभ व अशुभ कार्यास्रवके कारण हैं, ऐसा जानकर अशुभसे बचकर शुभमें वर्तना ठीक है। हमें निरन्तर यह भावना रखनी चाहिये—

"शास्त्राभ्यासो जिनपदनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः । सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे । सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥"

भावार्थ—जबतक मोक्षका लाभ न हो तबतक हमको नीचे लिखी सात बातें भव भवमें प्राप्त हों—(१) शास्त्रोंका अभ्यास, (२) जिनपद भक्ति, (३) सदा सत्पुरुषोंकी संगति, (४) सुचारित्रवानोंके गुणोंकी कथा करना, (५) दोषोंके कहनेमें मौन रखना, (६) सबसे प्यारे हितकारी वचन कहना, (७) आत्मतत्वमें भावना रखनी। चार भावनाएँ भी सदा भाना चाहिये:—

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदम् क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् । माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

भावार्थ—हे देव! मेरी आत्मामें सर्व प्राणियोंकी तरफ मैत्रीभाव रहे, गुणवानोंकी तरफ प्रमोदभाव या आनन्दभाव रहे, दुःखी जीवोंपर करुणाभाव रहे, विपरीत स्वभाववालों पर माध्यस्थभाव या उदासीनभाव रहे।

अहिंसातत्वकी भूमिकापर चलकर शुभ कार्योंको करना कराना व उनकी अनुमोदना करनी चाहिये। जहां कृत कारित व अनुमतिका कोई विकल्प नहीं है, केवल निर्विकल्प स्वानुभव है वहां आस्रवका अभाव है या गुणस्थानापेक्षा अल्प बन्ध है। ज्ञानीकी भावनाका वर्णन समयसारकलशामें कहा है—

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषयं मनोवचनकाये परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥ ३२–१० ॥

भावार्थ—मैं कृत, कारित, अनुमोदनासे मन वचन कायके द्वारा सम्पादित भूत, भविष्यत, वर्तमान सम्बन्धी सर्व कर्मोंको त्याग कर अर्थात् सर्वसे नाता तोड़कर एक कर्म करनेके विकल्पसे रहित परम शुद्ध चैतन्यभावका आलम्बन लेता हूं। यही ज्ञानीका कर्तव्य है।

---

(४) कुमति कुश्रुत कुअवधि–ये तीन भाव।

कुन्यान त्रिविधिं प्रोक्तं, जिह्वा अग्रेन तिष्ठते।
छाया त्रि ऊवंकारं, मिथ्यादृष्टि तत्परं ॥ ११ ॥
कुमतिं कृत्वा मथ्यात्वं, कुस्रुतं तस्य पस्यते।
कुअवधि तस्य दिष्टन्ते. मिथ्या माया विमोहितं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(कुन्यान त्रिविध प्र॰) कुज्ञान तीन प्रकारका कहा गया है (मिथ्यादृष्टि तत्पर) मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानको कुज्ञान कहते हैं (छाया त्रि) तीन कुज्ञानकी छाया सहित (ऊवंकारं) ॐ मन्त्रका जाप (जिह्वा अग्रेन तिष्ठते) जबानके ऊपर रहता है, भाव भासना भीतरमें नहीं होती है (मिथ्यात्व कृत्वा कुमति) पहला कुज्ञान मिथ्यादर्शन सहित कुमतिज्ञान है (तस्य कुस्रुत पस्यते) इसी मिथ्यादृष्टिके शास्त्रज्ञान कुश्रुत देखा जाता है (तस्य कु अवधि दिष्टन्त) मिथ्यादृष्टीके ही कुअवधिज्ञान देखा जाता है (मिथ्या माया विमोहित) ये तीनों ज्ञान मिथ्यात्वभावसे तथा मायाचारसे मोहित हैं–विपरीत हैं।

भावार्थ—पांच इंद्रिय तथा मनसे होनेवाले सीधे ज्ञानको मतिज्ञान कहते हैं। जैसे हाथसे छूकर ठंडा गरम, रूखा, चिकना, हलका, भारी, नर्म, कठोर पदार्थको जानना। जिह्वासे चखकर खट्टा, मीठा, चर्परा,

कड़वा, कषायला पदार्थ जानना। नाकसे सूंघकर सुगन्ध, दुर्गन्धमई पदार्थको जानना। आंखोंसे देखकर सफेद, लाल, पीले, काले, नीले पदार्थको जानना। कानोंसे सुनकर अनेक प्रकारके शब्दोंको जानना। मन द्वारा किसी नूतन विचारका ग्रहण करना। यह सब मतिज्ञान है। मतिज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थके द्वारा दूसरे पदार्थको जानना श्रुतज्ञान है। जैसे चिकने पदार्थको जानकर यह घी दूधसे बनता है, दूध गाय भैंसोंका होता है, गाय भैंस चारा खाकर दूध देती हैं। जिह्वासे मिष्ट पदार्थको जानकर यह मिठाई अमुक २ पदार्थसे बनी है, अमुकसे बनाई जाती है, चार पहरके भीतरकी है। कानसे बालकका शब्द सुनकर बालवयधारी पुरुषका ज्ञान करना श्रुतज्ञान है। मतिपूर्वक श्रुतज्ञान होता है। यह श्रुतज्ञान अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक दो प्रकारका होता है। किसी भी इंद्रियसे किसी पदार्थको जानकर इसके पीछे दूसरा भाव होना सो अनक्षरात्मक है। जैसे चीटीको सुगन्धका ज्ञान मतिज्ञानसे हुआ, फिर वह उस पदार्थको ग्रहण करनेका विकल्प करती है यह श्रुतज्ञान है। पुष्पको मतिज्ञानसे जानकर उससे मधु लेकर छत्तेम जमा करनेका ज्ञान श्रुतज्ञान है। वृक्षको तोड़ते हुए कठोर स्पर्शका ज्ञान मतिज्ञान है। फिर दुःखका अनुभव होना श्रुतज्ञान है। कानोंसे अक्षर सुनकर व आंखोंसे देखकर मन द्वारा उसके अर्थ या भावका जानना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। यह मनधारी सैनी पंचेंद्रियको ही होता है। मति व श्रुतसे ज्ञान सर्व ही संसारी जीवोंको साधारण रूपसे होते हैं। असैनी पंचेन्द्रिय तकको ये दोनों ज्ञान कुमति व कुश्रुत ही होते हैं। क्योंकि उनको सम्यक्त होनेकी व आत्मा व अनात्माको पहचाननेकी योग्यता नहीं है। उनके अज्ञान मिथ्यादर्शन सहित मति व श्रुत ज्ञान होते हैं। सैनी पंचेन्द्रियके जब मिथ्यादर्शनका उदय होता है तबसे कुज्ञान कहलाते हैं। सम्यग्दर्शनके साथमें सुज्ञान कहलाते हैं। मिथ्यात्वकी दशामें प्रगट पदार्थको ठीक जानते हुए जैसे कपड़ेको कपड़ा जानते हुए भी उस कपड़ेके सम्बन्धमें तीन विपर्यय भाव होते हैं-(१) कारण विपर्यय जैसे-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके परमाणु भिन्न २ हैं। एक पुद्गल जातिकी पर्याय नहीं है या यह सब जगत ब्रह्ममय है। ब्रह्म ही उपादान कारण है। (२) भेदाभेद विपर्यय-कारणसे कार्यको सर्वथा भिन्न ही मानना या सर्वथा अभिन्न ही मानना। जैसे गेहूंसे रोटी बनी। तब पर्यायकी अपेक्षासे रोटी गेहूंसे भिन्न है परन्तु द्रव्यकी अपेक्षा वही है ऐसा न मानकर एक ही बात मानना। एक मनुष्य जीव मरकर देव हुआ वहां पर्याय अपेक्षा वह भिन्न है, जीवकी अपेक्षा वही है, ऐसा न मानकर

सर्वथा एक ही मानना या भिन्न ही मानना। (३) स्वरूप विपर्यय-रूपादिक विज्ञान मात्र है, किसी पुद्गल जड़ पदार्थका गुण नहीं है। जीव पृथक् नहीं है, ब्रह्मका ही अंश है।

मिथ्यादृष्टीका भीतरी अभिप्राय संसार वासना है। उसके भीतरमें आत्मानन्द रसका स्वाद नहीं है। वह संसारमें लिप्त है, अतएव मतिज्ञानसे पदार्थोंको जानकर इष्ट पदार्थोंमें राग व अनिष्टमें द्वेष करके मोही होजाता है। स्त्री पुत्रादि धन धान्यमें तन्मय होजाता है। इष्ट पदार्थोंके लाभके लिये न्याय अन्यायका नहीं गिनता है। पर पदार्थोंमें अहंकार ममकार रखता है, जब कि सम्यग्दृष्टीकी अहंबुद्धि अपने शुद्ध आत्माके स्वरूपमें ही होती है। वह किसी भी पर पदार्थको अपना नहीं मानता है। भीतरसे सच्चा वैरागी होता है। आत्मानुभवकी शक्ति मिथ्यादृष्टीको नहीं होती है, इसलिये उसका सर्व मति व श्रुत ज्ञान कुमति व कुश्रुत ज्ञान कहलाता है।

यदि वह ॐ का जाप भी करता है व ध्यान भी करता है तौभी वह उसके भावोंको नहीं पहुंचता है। उसका यह सम्यग्ज्ञान नहीं होता है कि मन्त्र अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुका वाचक है। तथा वे पांचों परमेष्ठी आत्मानन्दके कारण व आत्मानुभवके कारण पूज्यनीय हैं। इनके आत्माका सच्चा स्वरूप ज्ञान नहीं पाता हुआ ॐ के ध्यानसे आत्मध्यानका लाभ नहीं करता है। मन्त्र व जपसे केवल पुण्य बांध लेता है। इसलिये कुज्ञानीका ध्यान संसारका ही कारण है। अनेक शास्त्रोंका ज्ञान भी मिथ्यातीके मान, माया, लोभ बढ़ानेका कारण होजाता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा पूर्वक कम या अधिक रूपी पुद्गल या संसारी जीवोंकी बातोंको जिस ज्ञानसे प्रत्यक्ष आत्मासे बिना मनकी व इंद्रियकी सहायतासे जाना जावे वह अवधिज्ञान है। स्थूल व सूक्ष्म द्रव्यको जानना, कितनी दूर तककी जानना, कितने काल तककी जानना, कितना गुण जानना सो कम व अधिक मर्यादारूप ज्ञान अवधिज्ञान धारीको होता है। यह ज्ञान कम व अधिक अनेक प्रकारका होता है। नारकियोंको व देवोंको जन्मसे होता है। तिर्यंच या मनुष्योंको किसी किसीको तप आदिके द्वारा हो जाता है। अवधिज्ञानसे अपने व दूसरोंके पिछले व अगले जन्मकी बातोंका ज्ञान होसक्ता है। इसके तीन भेद हैं-देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। देशावधि ज्ञान सर्वको होसक्ता है। शेष दो ज्ञान तद्भव मोक्षगामी साधुओंके ही होते हैं। मिथ्यादृष्टीके कुअवधि ज्ञान कहलाता है। वही ज्ञान सम्यग्दृष्टीके सुअवधि कहलाता है। कारण यही है कि

मिथ्यादृष्टी ज्ञानका फल विपरीत लेता है। वह इष्ट विषयोंकी प्राप्तिसे राग व अनिष्ट विषयोंसे द्वेषभाव रखता है। इसलिये सम्यग्दृष्टीके समान ठीक जानते हुए भी उसके ज्ञानको कुअवधिज्ञान कहते हैं। इन तीन कुज्ञानोंको होते हुए मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयके कारण इस जीवको कर्मोंका आस्रव विशेष होता है। क्योंकि ज्ञानके मिथ्यात्वका मिश्रण उसी तरह है जैसे निर्मल जलके साथ विष मिला दिया जावे। ज्ञान तो आत्माके गुणका विकास है, इससे ज्ञान बन्धका कारण नहीं है किंतु ज्ञानके साथ मोहका जितना उदय है वही केवल बन्धका कारण है।

श्री समन्तभद्राचार्यने आप्तमीमांसामें कहा है—

अज्ञानान्मोहतो बन्धो नाज्ञानाद्वीतमोहत । ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा ॥ ९८ ॥

भावार्थ—अज्ञानसे बन्ध मोहके कारणसे कहा है। यदि मोहका उदय अज्ञानके साथ न हो तो बन्ध नहीं होता है। जैसे क्षीणमोह गुणस्थानमें केवलज्ञान न होनेसे अज्ञान है तथापि मोह नहीं है इनसे सांपरायिक आस्रव नहीं है। मोह रहित यदि हो तो थोड़े श्रुतज्ञानसे ही केवलज्ञान होजाता है। यदि बहुत भी ज्ञान हो और मोही हो तो केवलज्ञान नहीं होता है। अतएव तीनो कुज्ञानोको सुज्ञानोंमें बदलनेके लिये मिथ्यात्वरूपी विषको दमन करना चाहिये मिथ्यात्वके वमनका उपाय जिनवाणीके द्वारा तत्वोंका मनन है। समयसारकलशमें कहा है—

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के । जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः ॥
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चैरनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥ ४–१ ॥

भावार्थ—निश्चय व व्यवहार नयके विरोधको मेटनेवाली स्याद्वादसे चिह्नित जिनवाणीमें जो रमण करते हैं उनका मोह मिथ्यात्व स्वयं वमन होजाता है, तब वे शीघ्र शुद्धात्माका अनुभव कर लेते हैं जो आत्मा परम ज्ञानमई ज्योतिस्वरूप है व सदासे है व किसी युक्तिसे इसका निषेध नहीं किया जासक्ता है।

(५) आर्त्त, रौद्र, मिश्र ये तीन भाव।

आर्त्त ध्यान रतो भावं, रौद्र ध्यान समाजुतं।
मिस्रस्य रागमय मिथ्या, त्रिभङ्गी नरयं पतं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(आर्तध्यानरतो भाव) आर्तध्यानमें लीन भाव (रौद्रध्यानसमाजुतं) रौद्रध्यान सहित भाव (मिस्रस्य रागमय मिथ्या) आर्तध्यान व रौद्रध्यान दोनोंका मिश्रित रागभाव मिथ्यादर्शन सहित होना मिश्रभाव है (त्रिभङ्गी नरय पत) ये तीनों नरकमें गिरानेवाले हैं।

भावार्थ—यहां भी मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा तीन भाव आस्रवके कारण बताए हैं। प्रथम आर्तध्यान—जहां दुखित, आकुलित, क्षोभित, शोकार्त परिणाम हो उसको आर्तध्यान कहते हैं। बहुत देरतक एक विषयकी चिंता करना ही ध्यान है। यह आर्तध्यान चार कारणसे होता है, इसलिये इसके चार भेद हैं—

(१) अनिष्ट संयोगज—मनको अप्रिय स्थान, वस्त्र, भोजन, स्त्री, पुत्र, नौकर, आभूषण, शत्रु आदिका संयोग होनेपर उससे छुटकारा पानेकी चिंतामें दुःखित होना (२) इष्टवियोगज—मनको प्रिय स्त्री, पुत्र, मित्र, भोजन, वस्त्र आदिका वियोग होजानेपर उनके संयोगकी कामना करके चिंता करते हुए दुःखित होना। (३) वेदना जनित रोगोंके होनेपर पीड़ाके कारण चिंतातुर होना। (४) निदानज—आगामी भोगोंके मिलनेकी तृष्णासे आकुल भाव रखना।

ये चारों आर्तध्यान मिथ्यादृष्टीके भीतर बहुत गाढ़ होते हैं, तीव्र होते हैं। उससे मिथ्यात्वी जीव कभी नरक आयु बांधकर नारकी होजाता है। यदि तीव्रता कम होती है तो तिर्यंच आयु बांधकर तिर्यंच होजाता है। इष्टवियोग आर्तध्यानके कारण दूसरे स्वर्गके देव एकेन्द्रिय तिर्यंच व बारहवें स्वर्ग तकके देव पंचेन्द्रिय तिर्यंच होजाते हैं। लक्ष्मण रामचन्द्रजीका मरण सुनकर तीव्र आर्तध्यानसे नर्कायु बांधकर नर्क चलेजाते हैं। ज्ञानीको वस्तुस्वरूप विचार कर, कर्मोंके उदयको समझकर सन्तोष रखना चाहिये। विषय भोगोंकी लालसा ज्ञानीको होती है, इसलिये वह निदान नहीं करता है। यद्यपि यह आर्तध्यान मिथ्यादृष्टीको ही मुख्यतासे होता है तथापि गृहस्थके अविरत सम्यक्त व देशविरत गुणस्थानमें भी कदाचित् होजाता

है। मुनिराजके छठे गुणस्थानमें भी निदानके सिवाय तीन आर्तध्यान शिष्यके वियोगपर व अनिष्ट स्थानादिके लाभपर या रागादिके कारण होजाते हैं।

रुद्र, क्रूर, दुष्ट आशयसे जहां चिंता किसी एक दुष्ट अभिप्रायमें प्रवर्ते उसको रौद्रध्यान कहते हैं। यह ध्यान चार कारणोंकी अपेक्षासे होता है, इसलिये इनके भी चार भेद हैं—

(१) हिंसानन्दी–हिंसा करने, करानेमें व सम्मति देनेमें आनन्दित होना। मिथ्यादृष्टी जीव स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है इसलिये तीन कृष्ण लेश्यासे परकी हानि करनेका दुष्ट विचार करता रहता है। (२) मृषानन्दी–असत्य बोलकर, बुलवाकर, व सम्मति देकर प्रसन्न होना। मिथ्यादृष्टी मन, वचन, कायकी कुटिलतासे वर्तकर अपना स्वार्थ साध्य करके झूठका जाल बिछाकर पर प्राणियोंको फांस लेता है। वे अपनी इस चतुराईसे बड़ा प्रसन्न होता है। (३) चौर्यानन्द-चोरी करके, कराके व सम्मति देके आनन्द मानना–मिथ्यादृष्टी धनका लोलुपी विश्वासघात करता है, जिसतरह बने परकी सम्पत्तिको हर लेनेमें सन्तोष मानता है। (४) परिग्रहानन्द परिग्रह बढ़ानेमें, बढ़वानेमें, व बढ़ती हुई देखकर आनन्द मानना–मिथ्यादृष्टी धनादिका तीव्र मूर्छावान होता है अतएव धनसंग्रहमें व धनकी रक्षामें इतना मगन होता है कि धर्म, परोपकार, दानादि कर्मको भूलकर केवल धनकी बढ़तीमें ही उन्मत्त रहता है।

इसतरह चार प्रकारका रौद्रध्यानका करनेवाला मिथ्यादृष्टी तीव्र अशुभ भावोंसे नर्क आयु बांधकर नारकी जन्मता है। मिथ्यात्वके चले जानेपर भी यह ध्यान चौथे पांचवें गुणस्थानमें भी कभी होजाता है। जब कभी न्यायकी रक्षार्थ गृहस्थको अन्यायी व दुष्टको व शत्रुको दमन करना पड़ता है तब वहां हिंसा, असत्य व चोरीका उपयोग करना पड़ता है। तथा इन प्रयोगोंसे यदि शत्रुका दमन होजाता है तो परिणामोंमें कुछ कालके लिये हर्ष आजाता है अथवा धनादिको न्यायपूर्वक कमाते हुए व रक्षा करते हुए कभी कभी प्रफुल्लित भाव होजाता है। साधुओंके परिग्रह नहीं है न आरम्भी हिंसाका कोई काम है। इसलिये छठे प्रमत्त गुणस्थानमें रौद्रध्यान बिलकुल सम्भव नहीं है। यहांपर मिथ्यात्वकी अपेक्षा हीसे कथन है।

आर्तरौद्रका मिश्र ध्यान भी नीचे लिखे दृष्टांतोंमें सम्भव है जैसे कोई किसीकी हिंसा करना चाहता है, हिंसा करनेका प्रयत्न करते वह बच गया, अपनी हिंसा होगई तब हिंसानन्द रौद्रध्यानके साथ

अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान होजाता है। इसी तरह मृषा बोलकर कार्य सम्पन्न करना चाहता था व चोरी करके धन लेना चाहता था व परिग्रह बढ़ाना चाहता था परंतु असफलता होनेपर शोक करता है, यह रौद्रध्यान मिश्रित आर्तध्यान है। परिग्रह बढ़ानेके लिये आगामी सम्पत्तिकी तीव्र अभिलाषामें ही दोनों ध्यान मिश्रित हैं।

इसतरह यह रौद्रध्यान, आर्तध्यान व मिश्रध्यान ये तीनों कुध्यान संसारके भीतर भ्रमण करानेवाले हैं, तीव्र आस्रवके कारण भाव हैं, हिंसाके मूल हैं, परको दुःखकारी व आपको दुःखकारी हैं। जहां दुःखकारी भाव होते हैं वहां तीव्र असातावेदनीय कर्मका भी बन्ध होता है। अतएव जो प्राणी संसारके भीतर रहते हुए दुःखोंसे बचना चाहते हैं उन्हें इन खोटे ध्यानोंसे बचना चाहिये। व सर्व जनहित भाव धारण करके परहितमें दयाभावसे वर्तना चाहिये। सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

मानस्तंभ दृढं भक्त्वा लोभाद्रिं च विदार्य वै। मायावल्लीं समुत्पाट्य क्रोधशत्रुं निहन्य च ॥ १९४ ॥

यथाख्यातं हितं प्राप्य चारित्रं ध्यानतत्परः। कर्मणां प्रक्षयं कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १९५ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी हैं वे मानके दृढ़ खम्भेको तोड़कर, लोभके पर्वतको चूर्णकर, मायाकी वेलको उखाड़कर, क्रोध-शत्रुको मारकर, हितकारी यथाख्यात चारित्रको प्राप्त करके ध्यानमें लीन होकर कर्मोंको क्षय करके परमपदको पाते हैं। चारों कषायोंको जीतनेसे आर्तरौद्र ध्यान नहीं होते हैं।

---

(६) मिथ्या समय, समय मिथ्या, प्रकृति मिथ्या—ये तीन भाव।

मिथ्या समयं च सम्पूर्ण, समय मिथ्या प्रकासए।
अनृतं ऋतं जानाति, प्रकृति मिथ्या निगोद ये ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या समय च सम्पूर्णं) मिथ्या अगमसे पूर्ण मिथ्या समय है (समय मिथ्या प्रकासए) जो मिथ्या आगम मिथ्या पदार्थको प्रकाश करता है वह पदार्थ समय मिथ्या है (अनृत ऋत जानाति) तब असत्यको सत्य जानकर मिथ्यात्व प्रकृतिवाला होजाता है या मिथ्यात्व प्रकृतिको बांध लेता है (प्रकृति मिथ्या निगोद ये) मिथ्यात्वकी प्रकृतिके उदयवश निगोदमें जाकर साधारणपना स्थिति एकेन्द्रिय होजाता है।

भावार्थ—मिथ्या आगम, मिथ्या पदार्थ, मिथ्याज्ञान–ये तीनों त्यागने योग्य हैं। इनकी संगतिमें मिथ्यात्व प्रकृतिका बन्ध होजाता है व एकेन्द्रिय साधारण नामकर्मका बन्ध पड़ता है इससे एक पंचेन्द्रिय मानव मरकर एकेन्द्रिय निगोद पर्यायमें जन्म प्राप्त कर लेता है।

(१) मिथ्या समय—जिस शास्त्रका वक्ता रागी, द्वेषी, व अल्पज्ञ होगा व एकांत दृष्टि रखनेवाला होगा वह शास्त्र मिथ्याशास्त्र है। जहां हिंसामें धर्म बताया हो, पशुबलिको पुष्ट हो, विषयभोगमें धर्म समझाया हो व देव मूढता, गुरु मूढता, लोक मूढता को पुष्ट किया हो, वृक्ष, जल, अग्नि, सूर्यकी पूजा बताई हो, पाखण्डी गुरुकी भक्ति दरशाई हो, सतीका अग्निमें जलना बताया हो, आत्माका सर्वथा निषेध किया गया हो, आत्माका स्वरूप अल्पज्ञ बताया हो, पदार्थकी अपेक्षा नित्य या सर्वथा अनित्य कहा हो, आत्माको सर्वथा अशुद्ध कहा हो, वह सर्व शास्त्र मिथ्या आगम है। जहां शिकार खेलना धर्म बताया हो, वह सब मिथ्या आगम है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह ये ही जगमें बड़े पाप हैं। इनकी प्रवृत्तिमें धर्म बतानेवाला शास्त्र प्रगट मिथ्या शास्त्र है। रागी, द्वेषी नानाप्रकार कुदेवोंकी भक्ति कराकर भय दिखाकर गृहस्थोंको मिथ्या पूजा अर्चामें लगाया गया हो वह सब मिथ्या आगम है। जहां अनेकान्तनयसे अनेक धर्मरूप पदार्थको बताया हो व जो सर्व प्राणी मात्रकी रक्षाका उपदेश देवे व वीतराग भावकी पुष्टिको, विषय कषायको हटावे वही सच्चा आगम है, इसके विरुद्ध सब मिथ्या आगम हैं।

श्री पद्मनन्दि मुनि धम्मरसायणमें कहते हैं—

जत्थ वहो जीवाण भासिज्जइ जत्थ अलियवयणं च जत्थ परदव्वहरणं सेविज्जइ जत्थ परयाणं ॥ १५ ॥

बहुआरम्भपरिग्गहगहणं सन्तोसवज्जियं जत्थ पंचुम्बरमहुमासं भक्खिज्जइ जत्थ धम्मम्मि ॥ १६ ॥

भावार्थ—जिस धर्मके आगममें जीवोंका वध बताया हो, असत्य भाषण धर्म हो, परद्रव्यका हरण व परस्त्रीका सेवन धर्म हो, जहां बहुत आरम्भ व परिग्रहका संग्रह धर्म हो, जहां सन्तोषका नाश हो, कीट वर्द्धित पांच उदम्बर फलोंका व मधु या मांसका भक्षण धर्म बताया हो सो आगम मिथ्या है, जगमें हिंसामय धर्मकी प्रवृत्ति हिंसामई आगम द्वारा ही है। नदी स्नानमें धर्म मानना, रात्रिमें खानेमें धर्म मानना ये सब मिथ्या आगमका ही प्रताप है।

(१) समय मिथ्या–मिथ्या आगममें कहे हुए पदार्थोंका स्वरूप भी मिथ्या ही होता है। आत्माका

स्वरूप अनेक गुण पर्यायमय है। यह अपनी सत्ता भिन्न२ रखता है, ऐसा न कहकर आत्माको परमात्माका ही अंश मानना या परमात्माको जगका कर्ता हर्ता मानना, अकर्ता कृतकृत्य, समभावी न मानना। जगतको सर्वथा क्षणिक मानना, या सर्वथा नित्य मानना। सुख दुखका दाता किसी ईश्वरको मानना, एक चेतन द्रव्यसे अचेतनकी उत्पत्ति मानना, या अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति मानना। द्रव्य पर्यायकी अपेक्षा अनित्य व द्रव्यकी अपेक्षा नित्य है। अनेक गुणोंका अभेद समूह है इससे एक रूप है। प्रत्येक गुण द्रव्यमें सर्व स्थानमें व्यापक है इससे अनेक रूप है, इत्यादि जसी वस्तु है उसका और रूप वर्णन पदार्थ मिथ्या है।

(३) प्रकृति मिथ्यात्व—मिथ्या आगमसे मिथ्या पदार्थोंको जानकर मिथ्याका श्रद्धान स्वभावमें पड़ जाना मिथ्या प्रकृति है। मिथ्यात्वके श्रद्धानसे यह प्राणी मिथ्याती होकर मिथ्या क्रिया करके मैंने धर्म पाला ऐसा मिथ्या श्रद्धान कर लेता है। वीतराग विज्ञानमई धर्मको न पाकर राग द्वेष वर्द्धक धर्मकी क्रियाको करके मैंने धर्म पाला ऐसा मान लेता है। इस मिथ्यात्वमय भावसे यह प्राणी मिथ्यात्व कर्म बांधकर निगोद चला जाता है। अतएव जो कर्मोंके आश्रवसे बचना चाहे उनको उचित है कि मिथ्या आगमको त्याग करे। यथार्थ आगमसे यथार्थ तत्वोंको जानकर सच्चा श्रद्धान पाकर सच्चा धर्म पालें।

---

(७) मिथ्या देव, मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्म—ये तीन भाव।

मिथ्यादेव गुरुं धर्म, अनृतं ऋत उच्यते।
असत्यं असास्वतं प्रोक्तं, त्रिभंगी निगोयं दलं॥ १५॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यादेवं गुरु धर्मं) मिथ्या देव गुरु धर्म (अनृत ऋत उच्यते) जो असत्य हैं उनको सत्य देव गुरु धर्म कहता है (असत्यं असास्वतं प्रोक्तं) वे असत्य हैं व अनित्य हैं (त्रिभंगी निगोयं दलं) इन तीनोंको माननेवाला निगोदका पात्र है।

भावार्थ—मिथ्या देव, गुरु, धर्म उनको कहना चाहिये जिनमें देवपना, गुरुपना व धर्मपना किसी भी तरह नहीं होसकता है। जैसे जल, वायु, अग्नि, समुद्र, पर्वत, नदी, वृक्ष, गौ, आदि जो तिर्यंच गतिमें

हैं उनको देव मान लेना। ऐसे मिथ्या देवोंको पुजवानेवाले व उपदेश देनेवाले मिथ्या गुरु हैं व ऐसे मिथ्या देवोंको मानना व पूजना मिथ्या धर्म है। जगतमें अज्ञान ऐसा है कि जलको पूजेंगे तो जल वर्षा होगी, आगको पूजेंगे तो भला होगा, वृक्षको पूजेंगे तो सौभाग्य रहेगा, पुत्र प्राप्त होगा। संसारी प्राणीको सांसारिक सुखकी कामना होती है व रोग वियोगादि दुःखोंसे बचना चाहते हैं। मिथ्या गुरु अपने स्वार्थ साधनके लिये द्रव्यादिके लोभसे भक्तोंको उपदेश देते हैं कि यदि इनको पूजेंगे तो दुःखोंसे छूट जाओगे व सुख मिलाप, धनका व पुत्रका लाभ होगा। भयभीत प्राणी उनके उपदेशोंको मानकर ऐसे मिथ्या देवोंकी आराधना करके अपनी शक्ति व धनका दुरुपयोग किया करता है। मिथ्या धर्मका सेवन किया करता है। इन मिथ्या देव, गुरु, धर्मके भीतर श्रद्धा रखनेसे उसको वीतराग सर्वज्ञ सच्चे देव, वीतरागी निर्ग्रंथ गुरु व वीतराग विज्ञानमय धर्मका श्रद्धान नहीं होपाता है। वह न तो आत्माको पहचानता है न पुण्य पापको समझता है कि जिनके उदयसे सुख दुःख होता है, न मोक्षको जानता है कि मोक्ष परमात्मा अवस्था अनन्त सुखमई है। वह संसारासक्त रहता हुआ अपना बड़ा अनर्थ करता है। मिथ्या धर्म लोक मूढ़तामें गर्भित है। रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है—

आपगासागरस्नानमुच्चय' सिकताश्मनाम्। गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥

भावार्थ—नदीको देवी व समुद्रको देव मानकर उनमें स्नान करनेसे आत्माकी शुद्धि मानना, बालू व पाषाणका ढेर करनेमें, पर्वतके गिरनेमें व आगमें जलकर मरनेमें धर्म मानना सब लोक मूढ़ता कही जाती है।

(८) मिथ्या दर्शन मिथ्या ज्ञान मिथ्या चारित्र–ये तीन भाव।

मिथ्या दसनं न्यानं, चरनं मिथ्या दिष्टते।
अलहन्तो जिन उत्तं, निगोयं दल उच्यते ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या दसंन न्यान) मिथ्या दर्शन मिथ्या ज्ञान (चरन मिथ्या दिष्टते) व मिथ्या दर्शन ज्ञान सहित चारित्र मिथ्या देखा जाता है। इन तीनों मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्रमें फंसा हुआ प्राणी

(जिन उत्तं अलहन्तो) जिनेन्द्र कथित सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई रत्नत्रय मार्गको न पाकर अज्ञानसे (निगोयं दुल उच्यते) वह प्राणी निगोदका पात्र होता है ऐसा कहा गया है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जब मोक्षमार्ग है, आत्माको कर्मबन्धसे छुडानेवाला है तब मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र संसार भ्रमणका कारण है। इस मिथ्यामार्गके भी दो भेद हैं–निश्चय मिथ्यामार्ग, व्यवहार मिथ्यामार्ग। अपने आत्माको यथार्थ न समझकर किन्तु औरका और समझकर श्रद्धान करना, व जानना व उसका ध्यान करना निश्चय मिथ्यामार्ग है। जैसे आत्माको अल्पज्ञ समझना, रागसे मुक्त न जानना, या इस आत्माको ऐसे ब्रह्मका अंश मानना जो जगतका कर्ता व फलदाता माना जाता है या आत्माको सर्वव्यापक मानना कि उसके प्रदेश शरीरप्रमाण न होकर जगतव्यापी हैं व आत्माको एकान्तसे नित्य ही मानना या अनित्य ही मानना। आत्मा द्रव्य स्वतंत्र अखण्ड अमूर्तीक पूर्ण ज्ञान दर्शन वीर्य आनन्दमई अविनाशी अपने ही गुणोंका पिंड व पर्यायोंका समुदाय है। जिनेन्द्रके जैनागममें अनेकांत रूप आत्माका स्वरूप बताया है कि यह आत्मा स्व द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा सत्‌रूप है पर द्रव्योंके द्रव्यादिकी अपेक्षा असत्‌रूप है। हरएक आत्मा अपनी सत्ता भिन्न रखता है तब अनंतानंत आत्माएं अपनी सत्ता अलग रखते हैं। पुद्गलादि अजीव द्रव्योंकी सत्ता भिन्न है। तथा आत्मा स्वभावको कभी न छोड़नेसे नित्य है उसी समय परिणमलशील होनेसे पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है। अखण्ड होनेसे एक है। अनेक गुण धारी होनेसे अनेक है। यह असंख्यात प्रदेशी है तथापि संकोच विस्तारकी शक्ति रखनेसे शरीरप्रमाण रहता है। न यह जगत स्वरूप है। यह जगतको जान सक्ता है पर जगतरूप नहीं होता है, ज्ञानसे पर ज्ञेय भिन्न रहता है। अज्ञानावस्थामें आप ही अज्ञान व राग द्वेष मोह रूप परिणमन करता है। आप ही अशुद्ध भावोंसे पुण्य पाप बांधता है व आप ही उनका फल भोगता है। आप ही अपने विभावोंसे संसारमें भ्रमण करता है व आप ही अपने स्वभावमें रमण करनेसे शुद्ध होजाता है, मुक्त होजाता है। मुक्त दशामें अपनी सत्ताको खोता नहीं, किसी परमात्मामें मिलकर आप सत्ता रहित नहीं होजाता है। ऐसा अपनी आत्माका स्वभाव है, सो सत्य है।

श्री जिनेन्द्रने द्रव्यानुयोगके ग्रन्थोंमें–प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, समयसार, नियमसार, परमात्मप्रकाश, आदिमें दिखलाया है उसको न मानकर अन्य प्रकारसे आत्माकी कल्पना कर लेना आत्माका

यथार्थ ज्ञान नहीं कहलाएगा। उस ज्ञान सहित श्रद्धान भी यथार्थ नहीं व उस ज्ञान श्रद्धान सहित ध्यान जप, तप, पूजा, पाठ भी यथार्थ चारित्र नहीं कहलाएगा। कभी कभी जैन शास्त्रोंका ज्ञाता भी यथार्थ न समझकर मिथ्या मार्गसे रहित नहीं होता है। जिसको स्वानुभव नहीं मिल सकता है उसको आत्माके आनन्दकी जातिका पता नहीं चलता है। मिथ्या दर्शन कर्मके उदयसे जिनवाणीको जानते हुए भी वह यथार्थमें आत्माका परमात्माका श्रद्धान नहीं कर पाता है। अनन्त सुखको भी इंद्रियजन्य सुखकी जाति मान लेता है। अथवा विषयकी तृष्णाकी वासना न छूटनेसे मोक्षमें भी इसी जातिका अनन्त सुख मान लेता है। ऐसा बाहरी जिन मुनिका भेष रख करके भी ग्यारह अंगका पाठी होकर भी मिथ्या दर्शन, ज्ञान, चारित्रवान कहलाता है। क्योंकि शुद्धात्मानुभवरूपी सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका लोभ इसको कर्मोदयसे नहीं प्राप्त होता है, वह नौ ग्रैवेयक तक जाकर भी संसारमें भ्रमण करता है। स्वानुभव रहित आत्माका ध्यान निश्चय मिथ्या मार्ग है। आत्माका यथार्थ श्रद्धान व ज्ञान होनेके लिये जैनागमको भले-प्रकार देखना चाहिये। यह आत्मा, न ब्रह्मका अंश है, न यह जड़से उत्पन्न है, न यह केवल अपरिणामी कूटस्थ नित्य है, इसका न आदि है, न अन्त है। यह स्वभावसे शुद्ध द्रव्य है। कर्मके संयोगमें अशुद्ध कहलाता है ान इसका स्वरूप है, ज्ञानसे कभी भिन्न नहीं था। यह अज्ञान दशामें परका कर्ता भोक्ता बन जाता है, ज्ञान दशामें स्वभावका कर्ता भोक्ता है। परिणमनशील होनेसे संसार–परिणतिको त्याग-कर मोक्ष परिणामको प्राप्त करता है। व्यवहार सम्यक्त धर्म सात तत्वोंका श्रद्धान व सच्चे देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान है। इस जिनेन्द्र कथित मार्गको न समझकर एक तत्व मानना या औरका और मानना या किसी ईश्वरके आधीन आत्माको मानना या रागी, द्वेषी देवोंको देव, परिग्रह धारी गुरुको गुरु व सराग भावको या हिंसाको धर्म या उसके कहनेवालेको शास्त्र मानना यह सब व्यवहार मिथ्या धर्म है। व्यवहार तथा निश्चय मिथ्या श्रद्धान ज्ञान सहित जप, तप, पूजा, पाठ ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध कराकर कदाचित् एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिरूप निगोद दशामें पटक देता है। घोर कर्मके आस्रवके कारण ये तीन मिथ्या दर्शन, ज्ञान चारित्र हैं। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

मिच्छादंसणमोहियउ परु अप्पा ण मुणेइ। सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुण ससारु भमेइ ॥ ७ ॥

देहादिउ जे पर कहियो ते अप्पाण मुणइ। सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुण संसार भमेइ ॥ १० ॥

भावार्थ—मिथ्या दर्शनसे मोहित जीव परमात्माको नहीं पहचानते हैं, वे बहिरात्मा संसारमें भ्रमण करते हैं। जो शरीरादि व राग द्वेषादि जो आत्माके स्वभावसे भिन्न हैं उनको आत्मा मानेगा सो बहिरात्मा है। वह भवमें भ्रमेगा ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

मिथ्यात्व परमं बीजं ससारस्य दुरात्मन. । तस्मात्तदेव मोक्तव्य मोक्षसाख्यं जिघृक्षुणा ॥ १२ ॥

आत्मतत्वं न जानन्ति मिथ्यामोहेन मोहिताः । मनुजा येन मानस्था विप्रलुब्धाः कुशासनैः ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस दुष्ट स्वरूप संसारका मूल कारण मिथ्या दर्शन है। जो कोई मोक्षके सुखको चाहता है उसे मिथ्यात्वका त्याग करना ही चाहिये। जो मिथ्या शास्त्रोंसे बहकाए हुए व मिथ्या ज्ञानके अहंकार रखनेवाले मानव हैं वे मिथ्या मूढभावसे मोहित होकर आत्माके सच्चे स्वरूपको नहीं जानते हैं।

(९) मिथ्या संयम, मिथ्या तप, मिथ्या परिनै—ये तीन भाव।

मिथ्या संजमं कृत्वा, तव मिथ्या परिनै युतं।
सुद्धं तत्तु न पस्यंते, मिथ्यादल निगोदय ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या संजयं कृत्वा) मिथ्यात्व सहित संयम पाल करके (मिथ्या तव परिनै युतं) तथा मिथ्यात्व सहित तप करके व मिथ्या परिणमन करके (सुद्धं तत्तु न पस्यते) शुद्ध आत्मतत्वका जो अनुभव नहीं करते हैं (मिथ्या दल निगोदयं) तब यह मिथ्या संयम तप व परिणमन निगोद कायमें प्राणीको पटक देता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित संयम, तप व परिणमन या चारित्र मोक्षमार्ग है। शुद्धात्म तत्वका जहां अनुभव है वहीं सच्चा सम्यग्दर्शन है, वहीं सच्चा संयम है, वहीं सच्चा तप है, वहीं सच्चा आत्मामें परिणमन रूप चारित्र है। मिथ्यादर्शन सहित संयम, तप, चारित्र सब मिथ्या है। संसारका ही कारण है। क्योंकि मिथ्यादृष्टीको शुद्ध आत्मीक तत्वकी पहचान नहीं है न उसको मोक्ष तत्वकी पहचान है। मिथ्यादृष्टिके भीतर कोई न कोई कषायकी वासना रहती है, जो बाहर दृष्टिगोचर नहीं होती है। या तो उसके

भीतर मान प्रतिष्ठाकी वासना है या आगामी विषयसुख प्राप्त होनेकी भावना है। या कोई मायाचार भी होसकता है। या किसीको हानि पहुँचानेके लिये क्रोधकी वासना भी होसक्ती है। जैन सिद्धान्तानुसार जो बाहरी संयम, तप, चारित्र ठीक ठीक पालते हैं, परन्तु अन्तरंगमें आत्मीक तत्वका अनुभव नहीं है, वे सांसारिक सुखकी वासना हीसे तपादि करते हैं। मोक्षमें भी जो अनन्तसुख होगा, ऐसा उसने शास्त्रोंसे जाना है उस सुखकी जातिको नहीं पहचाना है। इंद्रिय सुखके समान ही होगा ऐसा इसके भीतर मिथ्या भ्रम है। स्वानुभवके विना द्रव्यलिगी या संयम साधन है वह संसारका ही कारण होता है। समयसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

परमट्ठम्मिय अठिदो जो कुणदि तव वद च धारयदि। त सव्वं बालतव बालवद विंति सव्वहु ॥ १९९ ॥

परमट्ठवाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति। संसारगमणहेदु विमोक्खहेदुं अयाणंता ॥ १६१ ॥

भावार्थ—परमार्थभूत आत्मज्ञानसे शून्य जो कोई तप व व्रत धारण करता है उस सर्वको सर्वज्ञ देवने अज्ञान तप व अज्ञान व्रत कहा है। परमार्थ ज्ञानसे बाहर जो हैं वे अज्ञानसे संसारके भ्रमणका कारण जो पुण्य है उसीकी इच्छा करते हैं, वे मोक्षको व मोक्षके साधनको नहीं जानते हैं।

वहीं और भी कहा है—

वदसमिदी गुत्तीओ सीलतव जिणवरेहिं पण्णत्त। कुव्वतोवि अभविओ अण्णाणि मिच्छादिट्ठीय ॥ २९१ ॥

सद्दहदिय पत्तयदिय रोचेदिय तह पुणोवि फासेदि। धम्मं भोगणिमित्त णहु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ २९१ ॥

भावाथ—व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप जैसा जिनेन्द्रोंने कहा है वैसा करते हुए भी अभव्यजीव निश्चय सम्यक्तरूप आत्माके श्रद्धानके विना अज्ञानी तथा मिथ्यादृष्टी है। वह धर्मको श्रद्धानमें रखता है, जानता है, व साधन करता है, उसमें उसका हेतु अन्तरंगमें विषयभोग है, कर्मोंका क्षय हेतु नहीं है। मैं शुद्धात्मा अतीन्द्रिय सुखका धनी होजाऊँ ऐसी श्रद्धा नहीं है।

जो जीव जैन धर्मके व्यवहार चारित्रको नहीं पालते हैं वह बाहरसे भी मिथ्या संयम तप व चारित्रको रखते हैं। कोई साधु सन्यासी होकर भी अनछना पानी पीते हैं, अनछना पानीसे स्नान करते हैं, रात्रिको भोजन करते हैं, वनमें कंदमूल फलादि खाते हैं, गद्दी तकिया सिंहासनपर बैठकर शिष्योंको आज्ञा करते हैं, रुपया पैसा भूमि रखते हैं, खेती कराते हैं, लेनदेन करते हैं, मकान बनाते हैं, सवारीपर

चढते हैं, पैर पुजवाते हैं, द्रव्यको लेकर नाना प्रकार विषयभोग करते हैं और अपनेको साधु संयमी व गृहत्यागी मानते हैं। यह सब मिथ्या संयम है, कोई लकड़ी जलाकर तप करते हैं, जटा बढ़ाते हैं, नाखून बढ़ाते हैं, एक हाथ फैलाए हुए तप करते हैं, कायक्लेश करते हैं, जीवदयाका विचार नहीं सो मिथ्या तप है, कोई पुण्य प्राप्तिका व परलोकमें इन्द्रपद प्राप्तिका व राजा महाराजा होनेकी अभिलाषा रखकर चारित्र पालते है। दिनमें भूखे रहकर रात्रिको खाते हैं। ऐसे बाहरी हिंसाकारी व रागवर्द्धक कामोंको करते हुए अपनेको संयमी, तपस्वी व चारित्रवान मान लेता है व भोले भाइयोंसे व बहिनोंसे अपनेको पुजवाता है, सो महान् पाप बन्धकारक है, नीच गोत्र एकेन्द्रिय जाति तिर्यञ्चगति बांधकर ऐसे मानव निगोदमें साधारण वनस्पतिमें जन्मते हैं।

जहां वीतरागता व विवेक सहित शुद्धात्माका अनुभव करते हुए सहायतारूपमें व्यवहार संयम, तप चारित्र पाला जावे, वही सम्यक्त संयम, तप चारित्र है।

(१०) माया मिथ्या निदान–ये तीन भाव।

माया अनृतं राग, मिथ्यात्व मय समं जुतं।
असत्यं निदान वन्धं, त्रिभगी नरयं पतं ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ—(अनृतं रागं माया) मिथ्या क्रियासे रागभाव मायाचार है (मिथ्यात्वमय समं जुतं) मिथ्यात्वके श्रद्धान सहित क्रियाका भाव मिथ्या है (असत्य निदान बंध) असत्य पदार्थकी तृष्णा निदान है (त्रिभंगी नरय पतं) ये तीनों भाव नरकमें पतन करानेवाले हैं।

भावार्थ—मायाचार अपने व परको बहुत दुःखदाई है। लोभके वशीभूत होकर दूसरोंको ठगनेके लिये मिथ्या भावोंको विचारता है, मिथ्या वचन कहता है, मिथ्या व्यवहार करता है, कुटिलाईसे मन, वचन, कायको वर्तन करते हुये अपने परिणामोंको महान् हिंसक बना लेता है। दूसरोंको धोखा देकर ठग लेनेसे उनको अपनी हानि मालूम होनेपर बड़ा भारी कष्ट होता है। मायाचार हिंसा, झूठ, चोरी,

आदि पापोंका मूल है। परधन व परस्त्रीकी कामनासे व पांचों इंद्रियोंकी लोलुपतासे इच्छित विषय प्राप्त करनेके लिये प्राणी मायाचार करता है। रावणने मायाचारसे सीताको हरा था। यह उसका कार्य महान् आपत्तिका कारण हुआ। उसका राज्य भ्रष्ट हुआ व रावण मरकर नरक गया। रुद्रदत्त चोरने मायाचारसे श्रावक व्रत पाले मंदिरकी सम्पत्ति चुराई उस जन्ममें कोढ़ी होगया फिर मरकर सातवें नरक गया। मायाचारी महान् विश्वासघाती होता है, विश्वास दिलाकर ठग लेता है वह परिग्रह व मूर्छावान होनेसे नरकायु बांध लेता है।

८ मिथ्यात्व सहित धर्मकी क्रिया विपरीत होती है। जैसे यज्ञमें पशुओंका होम करना लाभदायक होगा, ऐसा मानकर अजमेध, गौमेध, अश्वमेध, नरमेध करके बकरे, गाय, घोड़े व मानवको होम कर देना। देवी देवता रुधिरके प्यासे हैं, ऐसा मानकर पशुओंको काटकर चढ़ाना, ईश्वरके नामपर पशुवध करेंगे तो वह प्रसन्न होकर हमारा भला करेगा, ऐसा मानकर पशुओंका वध करना। क्षत्रियोंका धर्म शिकार खेलना है, ऐसा मानकर निरपराध मृगोंको मारकर धर्म मानना, वैश्योंका धर्म दीवालीमें जूआ खेलना है, ऐसा मानकर जूआ व्यसन सेवन करना। होलीके दिनोंमें भांग पीना भाण्ड वचन वकना। होलीका रूप बनाकर होली जलाना धर्म है, ऐसा मानकर मिथ्या क्रिया करना। विधवा अपने पतिके साथ जल जावे उसको सती मानकर पूजना। दिनमें भूखे रहकर रात्रिको चन्द्रमा व तारे देखकर खानेमें धर्म मानना। किसी देवके सामने धर्म समझकर वेश्या नृत्य कराना। रागवर्द्धक नाटक व खेल करना। जिन२ कार्योंसे इंद्रियोंके विषय पुष्ट हों व कषायोंकी वृद्धि हो, वे सब अधर्म हैं। उन सब कार्योंको धर्म मान लेना मिथ्या भाव है। इन मिथ्या भावोंसे घोर हिंसादि पाप होते हैं तब हिंसानन्दी भाव नर्कायुको बांध देता है।

निदान भावके कारण प्राणी आगामी भोग सामग्रीकी गाढ तृष्णा रखता है। मैं नारायण पद पाऊं, चक्रवर्ती होजाऊं, इंद्र होजाऊं, बड़ा धनिक होजाऊं, पांचों इंद्रियोंके खूब भोग भोगूं। ऐसी गाढ़ तृष्णाका कांटा भीतर रखकर तप जप व्रत उपवास करता है, कदाचित् जैन धर्मानुसार श्रावक व साधुके व्रत पालता है। निदानभावसे यदि हिंसाकारी तप व धर्मक्रिया करता है तो रौद्रध्यानसे नरकायु बांध लेता है। जिस धर्मसे आत्मीक आनन्द मिल सक्ता था उस धर्मको निदान भावसे सेवन करके परिणामोंमें आतुरता रखता है कि मैं पुण्यबन्ध करते व शीघ्र ही मरके इच्छित भोग पाऊं।

ये तीनों भाव माया, मिथ्या, निदान महान कर्मोंके आस्रवके कारण हैं क्योंकि तीनोंमें तीव्र लोभकी भूमिका है। लोभके वश हो मायाचार करता है, मिथ्यात्वका सेवन करता है व निदान भाव करता है। सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं:—

भोगार्थी यः करोत्यज्ञो निदानं मोहसंगतः। चूर्णीकरोत्यसौ रत्नं अनर्थसूत्रहेतुना ॥ १२६ ॥

भावार्थ—जो भोगोंका अर्थी, अज्ञानी मोही होकर निदान भाव करके धर्मका साधन करता है वह केवल सूतके लिये रत्नोंको चूर्ण कर डालता है। श्री चन्द्रकृत मणिमालामें कहा है—

मुंच मुंच विषयाऽमिषभोगं लुंप लुंप निजतृष्णारोग। रुंध रुंध मानममातंग धर धर जीव विमलतरयोग ॥ ६९ ॥

भावार्थ—हे भाई! तू अपने भीतरसे तृष्णारूपी रोगको निकाल कर फेंकदे, विषयरूपी मांसका भोग छोड़दे, मन हस्तीको रोककर निर्मल आत्मध्यानका अभ्यास कर। माया, मिथ्या, निदान तीन महान् दोष दूर करके निर्मल भावोंसे आत्महित करना योग्य है।

---

(११) राग, द्वेष, निदान-ये तीन भाव।

रागादि भावनं कृत्वा, द्वेष निदान वर्धते।
अनृतं उत्सहं भावं, त्रिभंगी थावर दलं ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ—(रागादि भावनं कृत्वा) विषयोंमें राग व ग्रहणकी भावना करके (द्वेष निदान वर्धते) बाधक कारणोंसे द्वेष तथा साधक कारणोंका निदान बढ़ता है (अनृतं उत्सहं भावं) असत्य विषयोंके भोगका उत्साह भावोंमें घर कर लेता है (त्रिभंगी थावर दलं) ये तीन भाव स्थावर कायोंके भीतर लेजानेवाले हैं।

भावार्थ—पांचों इंद्रियोंके भोगोंका रागभाव संसारका मूल कारण है। इसीसे द्वेषभाव व निदान भाव बढ़ता है। ये भोग मिथ्या हैं, असार हैं, अतृप्तिकारी हैं उन्हींका तीव्र उत्साह परिणामोंमें रहता है। तब बाधक कारणोंसे द्वेष होता है व साधक कारणोंके आनेकी तीव्र अभिलाषा होती है, अर्थात् निदान भाव होता है। मिथ्यादृष्टी संसारी प्राणी इन ही भावोंमें पड़कर पापकर्मका बन्ध करते हैं। देवोंका

दृष्टांत लिया जावे तो भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी व कल्पवासी दूसरे स्वर्ग तकके मिथ्यात्वी देव विषयोंके अत्यन्त रागी होते हैं। जब माला मुरझा जाती है तब बड़ा भारी शोकभाव पैदा होजाता है, वियोग होनेवाला है उसमें द्वेष पैदा होजाता है। साथमें निदान भी होता है। यहांसे मरनेके बाद फिर भी खूब भोग मिले। उस समयके आर्त परिणामोंसे यह जीव तिर्यञ्च आयु स्थावर नामकर्म बांध लेता है और देव मर करके वृक्षादि स्थावर पैदा होजाता है। सूक्ष्मदृष्टिसे विचार किया जावे तो सर्व मिथ्यादृष्टी इन तीन भावोंमें रातदिन ग्रसित रहते हैं।

एकेन्द्रियके आहार व मैथुन व परिग्रह संज्ञा या तीनों बातोंकी इच्छा होती है। वह स्पर्शनेन्द्रियसे इष्ट पदार्थोंका राग करता है। भय संज्ञा होती है इससे भयकारी साधनोंसे द्वेष होता है। तृष्णावश आगामी इच्छित भोग चाहता है। मन न होनेसे कषाय जनित अबुद्धिपूर्वक उनके रागद्वेष व निदान भाव होते हैं। इसी तरह द्वेन्द्रिय जीवोंके स्पर्शन व रसना इंद्रियकी घोर लालसा होती है। रसके लोभी हो विषयको ढूँढा करते हैं, भयभीत रहते हुए अपने शत्रुओंसे डरते हैं, द्वेषभाव करते व आगामीमें रस मिले ऐसा अबुद्धि पूर्वक निदान होता है। तेंद्रियके स्पर्शन, रसना व घ्राणका; चौन्द्रियके स्पर्शन, रसना, घ्राण व चक्षुके विषयोंका; पांच इंद्रियोके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इन्द्रियोंका तीव्र राग भाव रहता है। बाधकोंसे द्वेप होता है, आगामीकी चाह होती है। इन्हीं मिथ्या विषयोंके लोभमें फँसकर हाथी स्पर्श इंद्रिय वश पकड़ा जाता है। मछली रसना इंद्रिय वश कांटेमें फँसकरके तड़फ तड़फकर जान देती है। भ्रमर नाकके वश कमलके भीतर बन्द होकर प्राण गमाता है। पतङ्ग चक्षु इंद्रिय वश दीपकमें जल जाता है। मृग कर्ण इंद्रिय वश शिकारीसे पकड़ा जाता है। मानव इन पांचो इंद्रियोंके रागमें फँसा हुआ क्षणभंगुर विषयभोगोंका तीव्र उत्साह रखता है। स्त्रीका सम्बन्ध मिलाता है, रसीले भोजन एकत्र करता है, सुगन्ध द्रव्य लाता है, मनोहर खेल तमाशे चित्र देखता है, सुरीले गान सुनता है। इन कार्योंमें जो बाधक होते हैं उनसे द्वेषभाव करके उनका निवारण करता है। यदि अपना सगा भाई भी विषयोंके भोगमें बाधक होता है तो उसका मरण तक चाहता है। नए नए सुन्दर विषयभोग मिलते चले जावें ऐसा निदान भाव रखता है, मरकरके भी बढिया भोग पाऊँ ऐसा भाव करता है। इस लोभके वश होकर कदाचित् धर्म भी सेवन कर लेता है। विपयोंका राग ही रागद्वेष निदान भावका कारण है। सम्यग्दर्शी-

नके लाभ विना यह विषयसुखकी श्रद्धा मिट नहीं सक्ती है। जिसको आत्मीक सुखका स्वाद आवे वह विषयसुखको तुच्छ व झूठा जाने। मिथ्यादृष्टीको इसी विषयसुखकी ही रुचि रहती है। इसलिये रागद्वेष व निदान भावोंमें तन्मयी होकर तिर्यंच एकेन्द्रिय जातिका बन्ध कर लेता है। इंद्रिय विषयोंका राग महान अनर्थकी परंपराका कारण है। इस लोक व परलोकमें दुःखोंका बीज है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं:—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भाव। जदि तं णहि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं॥ ६४॥

ते पुण उदिण्णतण्हा, दुहिदा तण्हाहिं विसयमोक्खाणि। इच्छंति अणुभवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता.॥ ७५॥

भावार्थ—जिन प्राणियोंकी रति इंद्रियोंके भोगोंमें है उनको स्वभावसे ही दुःख है। यदि स्वभावसे उनको पीड़ा न हो तो वे जीव इंद्रियोंके विषयोंमें व्यापार न करें। सर्व ही प्राणी एकेन्द्रियादिके विषयोंका व्यापार विषय रागसे ही है। संसारी प्राणी तृष्णाकी दाहसे पीड़ित होते हैं। उसी कष्टको न सह सकनेके कारण वारवार विषयसुखको चाहते हैं और भोगते हैं। मरणपर्यंत ऐसा करते रहते हैं तथापि दुःखोंके सन्तापसे मुक्त नहीं होते हैं। शिवकोटि आचार्य भगवती आराधनामें कहते हैं—

एगम्मि चेव देहे करज्जदुक्खं णवकरिज्जअरी। भोगा ये पुण दुक्खं करंति भवकोडिकोडिसु॥ १२७४॥

भावार्थ—वेरी एक ही देहमें दुःख करे या न करे, परन्तु ये विषयभोग तो इस जीवको करोड़ों जन्मोंमें दुःखी करते हैं। ज्ञानीको विषय राग त्यागना ही चाहिये जिससे संसारका कष्ट न हो।

(१२) मद, मान, माया—ये तीन भाव।

मदष्टं मान सम्बन्धं, माया अनृतं कृतं।
भावं असुद्ध सम्पूर्ण, त्रिभंगी थावरं दलं॥ २०॥

अन्वयार्थ—(मदष्टं मान सम्बन्ध) आठ प्रकार भेदके सम्बन्धसे मान या अहँकार होजाता है (माया अनृतं कृत) मानके लिये असत्य वर्तन करके मायाचार करता है (सम्पूर्ण असुद्ध भावं) ये तीनों ही सर्वथा प्रकार अशुद्ध भाव हैं (त्रिभंगी थावरं दल) इस त्रिभङ्गीका धारक स्थावर योनिका पात्र होजाता है।

भावार्थ—कारण कार्यकी अपेक्षा मद, मान, माया त्रिभंगी बताई है। जगतमें पुण्यके उदयसे मानवोंको आठ प्रकार शक्तियें प्राप्त होती हैं। उत्तम जाति (मामाका पक्ष), उत्तम कुल (पिताका पक्ष), धन, रूप, शरीरबल, अधिकार, विद्या व तपबल। इन आठोंकी प्रचुरता देखकर दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें अधिक देखकर अज्ञानी मिथ्यादृष्टी मद कर लेता है, उसको एक प्रकारका नशा या मद चढ़ जाता है। मदिरा पीनेसे नशा चढ़ जाता है तब वह धनादिके नशेमें चूर होकर अभिमानी बन जाता है। अपनेको बड़ा देखता है दूसरोंको नीचा देखता है। अपनी मान प्रतिष्ठा बनाये रखनेको सदा प्रयत्नशील होता है। दूसरोंके ऐश्वर्य व यशको सहन नहीं कर सक्ता। तब रातदिन अपना यश बढ़ानेमें व दूसरोंका यश घटानेमें व लक्ष्मीका लाभ दूसरोंको न हो मुझे होजावे, इस प्रयत्नमें अनेक प्रकार मायाचार करता है। कपटसे दूसरेका अपमान कराता है, धनादिकी हानि कराता है। अपना बड़प्पन प्रगट करनेकी मान बड़ाईसे लिये धन खरच देता है, धर्म भी अभिमान पुष्टिके लिये करता है, उस मदवान व्यक्तिका सारा जीवन मानकी मरम्मतमें बीतता है। वह उन्मत्तकी तरह अविनयी बन जाता है। गरीबोंका तिरस्कार करता है, उनको दुर्वचन कहता है। दुःखियोंको दुःखी देखकर उसके मनमें कठोर भाव होनेसे दया नहीं होती है। उसका एक ध्येय अभिमान पोषण होजाता है। जैसे मदिरा पीनेवालेकी आदत मदिराकी पड़ जाती है वैसे ही इसको अभिमानकी आदत पड़ जाती है। जरासा कोई अपमान करे तो यह शत्रु बन जाता है, व उसका हरतरह नाश करनेका उद्यम करता है।

ज्ञानी जीव लौकिक सम्मतिको पुण्यका फल जानकर नाशवन्त मानते हैं, पुण्यका उदय न रहनेसे सब सम्पत्ति अधिकार आदि चला जाता है, शरीर रातदिन जलनशील है इससे इसके बल व रूपका वह ज्ञानी मद नहीं करता है। ज्ञानी शक्ति–सम्पन्न होकर अधिक नम्र बन जाता है, अपने बलको परोपकारमें खर्च करता है। जैसे–फल सहित वृक्ष नम्रीभूत होकर सबको तोड़नेका अधिकार देते हैं।

मिथ्यादृष्टी जीव इस मदके कारण तीव्र कृष्णलेश्यामें अशुभ आयु बांध लेता है। तिर्यंच आयु व नीच गोत्र बांधकर एकेन्द्रिय स्थावर जन्मता है। नीच गोत्रके बन्धका कारण मान करना है।

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिने तत्वार्थसारमें कहा है—

असद्गुणानामाख्यानं सद्गुणाच्छादनं तथा। स्वप्रशंसान्यनिन्दा च नीचैर्गोत्रस्य हेतवः ॥ ९३–४ ॥

भावार्थ—अपने न होते गुणोंको कहना, दूसरेके होते हुए गुणोंको ढक देना, अपनी प्रशंसा करना, परकी निंदा करना, नीच गोत्रके आस्रवके भाव हैं। ज्ञानी सम्पत्ति होनेपर इनकी अथिरताका विचार करता है। जैसा श्री बृहत् सामायिकपाठमें श्री अमितगति आचार्य कहते हैं—

सकललोकमनोहरणक्षमाः करणयौवनजीवितसम्पदः। कमलपत्रपयोलचञ्चला किमपि न स्थिरमस्ति जगत्त्रये ॥ १०९ ॥

भावार्थ—सर्व लोगोंके मनको हरण करनेवाली इन्द्रियें हों, युवानी हो, जीवन व सम्पत्ति हो तौभी ऐसी चञ्चल है या नाशवान है, जैसे कमलके पत्तेपर पड़ी हुई पानीकी बून्द झटसे गिर जाती है। वास्तवमें तीन जगतमें कोई भी पर्याय पदार्थकी स्थिर नहीं है।

(१३) कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र–ये तीन भाव।

कुदेवं कुगुरुं वन्दे, कुशास्त्रं चिंतनं सदा।
विकहा अनृत सद्भावं, त्रिभंगी नरयं दलं ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ—(कुदेवं कुगुरुं वंदे) मिथ्यादृष्टी कुदेव व कुगुरुको नमस्कार करता है (कुशास्त्रं चिंतनं सदा) मिथ्या शास्त्रोंकी सदा चिन्ता किया करता है (विकहा अनृत सद्भाव) खोटी कथा व मिथ्या चर्चामें लगा रहता है (त्रिभङ्गी नरय दल) इन तीनोंके आराधनसे नरक गतिका पात्र होजाता है।

भावार्थ—रागद्वेष मोह संसार है। जो देव इन रागद्वेष मोहके वशीभूत हैं व स्वयं अज्ञानी हैं, पूर्ण ज्ञानी नहीं हैं, वे सर्व कुदेव हैं। सुदेव वे ही हैं जो सर्वज्ञ व वीतराग हों। अज्ञानी जीव धनादि पुत्रादि सांसारिक प्रयोजनका लोभी होकर कुगुरु द्वारा बताये हुए रागीद्वेषी देवोंकी आराधना किया करता है। उन देवोंको प्रसन्न करनेके लिये पशुबलि तक चढ़ा देता है। उन देवोंसे सदा भयभीत रहता है। उनकी मान्यतामें कमी होनेसे अपना नाश मानता है। देवगति धारी इन्द्र, धरणेन्द्र, देवी, चक्रेश्वरी, पद्मावती, कालिका, दुर्गा, राक्षस, भूत, पिशाच, किन्नर, किम्पुरुष, सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति, कुबेर आदि सब संसारी हैं, रागी द्वेषी हैं, अविरत भावधारी हैं। इनमें कोई सम्यक्ती हैं, कोई मिथ्यात्वी हैं, इनकी आराधना केवल रागभावको बढ़ानेवाली है, मोक्षमार्गसे हटानेवाली है, वीतराग सर्वज्ञकी आराधना मोक्षमार्गमें

सहायक है। परिग्रहधारी आरंभासक्त कुदेवोंको पुजानेवाले धनके लोभी अनेक प्रकारके कुगुरु हैं। उनके उपदेशसे ही कुदेवोंकी भक्ति जगतमें चल पड़ी है। कुशास्त्र वे ही हैं जिनमें मिथ्या धर्मका उपदेश हो, एकांत कथन हो, हिंसामें धर्म बताया हो, पापबन्धके कारणोंको पुण्यबन्धकारक दिखाया हो। स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, राजकथामें उलझाकर रागद्वेष बढानेवाली कथाएँ भी कुशास्त्र हैं। स्वार्थी प्राणी लोभके वशीभूत होकर कुधर्मपोषक मिथ्याशास्त्रोंको मानता है, पढ़ता पढ़ाता है व उपन्यास कहानी पढ़कर मनको रागी व कामी बनाता है। तीव्र सांसारिक ममत्वके कारण ऐसा कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रका भक्त नरकायु बांधकर नरकगतिमें चला जाता है, देवमूढता पाखण्ड मूढ़तामें फँसा रहता है।

श्री समन्तभद्राचार्यने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें इन मूढ़ताओंका स्वरूप लिखा है—

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः। देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

सग्रन्थारम्भहिंसाना संसारावर्तवर्तिनाम्। पाखण्डिना पुरस्कारो ज्ञेय पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥

भावार्थ—किसी फलकी इच्छा करके आशावान होकर रागद्वेषसे मलीन देवताओंकी भक्ति सो देवमूढ़ता है। परिग्रह आरम्भ व हिंसादि कर्ममें लीन, संसारकी वासनाओंसे वासित गुरुओंकी भक्ति गुरुमूढ़ता है। धम्मरसायणमें कहा है—

छुह तण्हा भय दोसो राओ मोहो य चिंतण वाही। जर मरण जम्म णिद्दा खेदो सेदो विसादो य ॥ ११८ ॥

रइ विम्हओ य दप्पो एए दोसा तिलोयसत्ताणं। सव्वेसिं सामण्णा संसारे परिभमन्ताणं ॥ ११९ ॥

एए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जन्ति छुहतिसाईया। सो होइ परमदेओ णिस्सन्देहेण घेतव्वो ॥ १२० ॥

जइ इच्छय परमपय अव्वावाहं अणोवम सोक्खं। तिहुवणवंदियचलण णमह जिणंदं पयत्तेण ॥ १२१ ॥

भावार्थ—१–क्षुधा, २–तृषा, ३–भय, ४–द्वेष, ५–राग, ६–मोह, ७–चिन्ता, ८–रोग, ९–जरा, १०–मरण, ११–जन्म, १२–निद्रा, १३–खेद, १४–स्वेद, (पसीना), १५–विषाद, १६–रति, १७–तृष्णा, १८–मद ये सब दोष तीन लोकके प्राणियोंमें सामान्य रीतिसे पाये जाते हैं। ये सब दोष जिनमें न हों, वे ही परम देव हैं, उन ही वीतराग देवको मानना चाहिये। यदि परमपदकी व बाधा रहित अनुपम सुखकी वांछा है तो त्रिभुवनसे पूज्य श्री अरहन्त जिनेन्द्रकी प्रयत्नपूर्वक भक्ति करो।

(१४) कुल, अकुल, संग–ये तीन भाव।

कुल भावं सदा स्तुत्य, अकुलं कुसंग संगते।
अभावं तत्र अन्यानी, त्रिभङ्गी दल संजुतं ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ—(कुल भाव सदा स्तुत्य) अपने कुलकी जो सदा बड़ाई किया करता है, कुलका गर्व रखता है (अकुल कुसंग संगते) तथा नीच कुलवालोंकी व कुसंगकी सेवा किया करता है (तत्र अन्यानी अभावं) उस संगतिसे अज्ञानी होकर कुभावमें मगन होजाता है (त्रिभङ्गी दल संजुत) ये तीन भेद आस्रवके कारण हैं।

भावार्थ—यहां कुलका गर्व, नीच कुल सेवा, कुसंगति सेवा, ये तीन कारण अज्ञानी होनेके व राग द्वेष, मोह विभावोंमें फँसनेके कारण बताए हैं। कुलका गर्व ऐसा होता है कि हम उच्च कुलके हैं, ऐसा मानकर गरीब दुःखी नीच कुलवालोंका तिरस्कार करता है, उनको सताता है, उनसे बहुत काम लेकर कम मजूरी देता है। हम ब्राह्मण हैं, हमको पाप क्षम्य है, ऐसा मानकर हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहका संग्रह करता है, निर्बल होकर इन्द्रियोंके विषय सेवन करता है, पाप करनेमें शङ्का नहीं करता है। कोई कोई ऐसा मान लेते हैं कि हम उच्च कुलके हैं, हमहीको उच्च धर्म पालनेका अधिकार है, दूसरा कोई पाल नहीं सक्ता। कुलके गर्वसे उन्मत्त हो कठोर परिणाम रखके अपनी प्रशंसा व दूसरोंकी निंदा करता है। उच्च कुलके गर्वमें विनयसहित शास्त्रोंका अध्ययन नहीं करता है। सच्चे साधुओंका सङ्ग नहीं करता है। तत्वज्ञानको, आत्मज्ञानको न पाकर अज्ञानी बहिरात्मा रागी द्वेषी बना रहता है। धनवश लोभी व मानी होजाता है, धर्मकार्यसे विरोध रखता है, पापमें लक्ष्मी खर्च करता है।

नीच कुलवाले उन्हींको कहा जाता है जो लोकनिंद्य काम सदा करते हैं। जैसे मदिरा पीते हैं, भक्ष्य अभक्ष्यका, स्नान शौचका, वाक्य कुवाक्यका, कृत्य अकृत्यका विवेक नहीं रखते हैं। ऐसे नीच कुलवालोंकी संगतिसे अविवेक बढ़ता है। आप भी निंद्य आचरणी होजाता है। राग द्वेष मोहको बढ़ा लेता है। कुसंग सेवा प्राणीको महापापी बना देती है। जूआ खेलना, मांसभक्षण, मदिरापान, चोरी, शिकार, वेश्यासेवन, परस्त्री सेवन ये सातों ही व्यसन कुसंगतिसे ही सीखनेमें आते हैं। भांग पीना, तम्बाकू पीना, चौपट, शतरंज–तास खेलना, बकवाद करना, परनिंदा आत्म प्रशंसा करना, विकथाएँ

करना, सब कुसंगतिसे आजाती हैं। इसलिये उपदेश है कि कर्मोंके आस्रवके दोषसे बचनेके लिये अपने कुलका व ऊँचपनेका घमण्ड न करके शास्त्र ज्ञान प्राप्त करे, नीच व कुसंगकी संगति टाले। सज्जनोंकी, विद्वानोंकी, धर्मात्माओंकी, गुणवानोंकी संगति सदा रक्खे। सत्संगतिसे गुणोंकी वृद्धि होती है, कुसंगतिसे औगुणोंकी वृद्धि होती है। नीम वृक्षकी छायामें लाभ होता है, बबूलकी छायामें दोष होता है। मानवको उचित है कि या तो एकांत सेवन करे, सच्चे शास्त्रोंकी संगति करे या धर्मात्मा सज्जनोंकी सुचारित्रवालोंकी संगति करे। मधुकी मक्षिकाके समान गुणोंका संग्रह करना उचित है। जोंकके समान औगुण संग्रह ठीक नहीं। मिथ्यात्व, अन्याय व अभक्ष्य ये तीन महान् दोष हैं, जो कुसंगतिसे ही प्राप्त होते हैं। बालक व बालिकाओंको कुसंगतिसे बचाकर धर्मशास्त्रोंका ज्ञान देना चाहिये। सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके कारणभूत जो विशुद्धिलब्धि है उसकी प्राप्ति सत्संगति व सुशिक्षासे ही होती है।

सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

कुसंसर्गः सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायकः। सगुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत्क्षणात् ॥ २६९ ॥

सत्संगो हि बुधः कार्यः सर्वकालसुखप्रदः। तेनैव गुरुतां याति गुणहीनोऽपि मानवः ॥ २७० ॥

सद्गुणैः गुरुतां याति कुलहीनोऽपि मानवः। निर्गुणः सकुलाढ्योऽपि लघुतां याति तत्क्षणात् ॥ २७४ ॥

भावार्थ—दोषोंको बढ़ानेवाला या देनेवाला कुसंग है। कुसंगतिका त्याग सदा ही करना चाहिये। कुसंगतिसे गुणवान मानव भी क्षणभरमें लघुताको पालेता है। सर्व काल सुखदाई सत्संग बुद्धिवानोंको सदा कर्तव्य है जिससे गुणहीन भी मानव बड़ेपनेको या गुणपनेको प्राप्त होजाता है। कुलहीन भी मानव सत्संगतिसे सच्चे गुणोंको पाकर महान्‌पनेको प्राप्त होजाता है। यदि गुणहीन हो तो ऊँचे कुलका मानव भी क्षणमात्रमें लघुताको पाजाता है। जगतमें गुण ही पूज्य है। यमपाल चाण्डालकी महिमा शास्त्रोंमें इसीलिये की है कि उसने अहिंसा व्रतको प्राण जानेतक भी पाला था। परस्त्री हरणके कारण त्रिखण्डी रावण ऐसे महान् पुरुषकी निंदा की गई है। धर्मात्मा चारुदत्त सेठ वेश्याकी संगतिसे भ्रष्ट होगया। विद्युच्चर चोर जम्बूस्वामीकी संगतिसे साधु होगया। एक सत्यवादी व सम्यग्दृष्टी चांडालसे असत्यवादी व मिथ्यादृष्टी ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य कभी ऊँचा नहीं माना जासक्ता है।

(१५) अनृत अचेत परिनै–ये तीन भाव।

अनृत अचेत दिष्टं तं, परिणामं यत्र तिष्ठते।
अन्यानी मूढ दिष्टी च, मिथ्या त्रिभङ्गी दलं ॥ २३ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत अचेत दिष्टं तं) मिथ्यात्वी व अज्ञानी देखे जाते हैं (यत्र परिणाम तिष्ठते) मिथ्यात्व व अज्ञानमें ही उनका परिणाम या वर्तन होजाता है (अन्यानी मूढ दिष्टी च) ऐसे अज्ञानी मूढ़ श्रद्धावाले तथा वैसे आचरण करनेवाले (मिथ्या त्रिभंगी दलं) मिथ्यामार्गी हैं, ये तीनों ही पापास्रवके पात्र हैं।

भावार्थ—निसर्ग या स्वभावसे होनेवाला मिथ्यात्वभाव सर्व संसारी जीवोंके अनादिकालसे है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत सर्व जीव जिस शरीरको प्राप्त करते हैं, उसी शरीरमें आपापना मान लेते हैं, शरीरसे भिन्न कोई अमूर्तीक ज्ञानमई आत्मा है ऐसी प्रतीति उनको नहीं होती है। ऐसे मिथ्याती अधिक ज्ञानी होते हुए, मिथ्याभावमें ही रमण किया करते हैं। जितनी इन्द्रियें जिस शरीरमें होती हैं उतनी इन्द्रियोंकी इच्छाएँ उनके उपजती हैं व उनकी पूर्ति करनेमें ही निरन्तर उद्यम रहता है। यदि इच्छित विषय मिल जाते हैं तब सुख मान लेते हैं। यदि नहीं मिलते हैं व बाधा होजाती हैं तब दुःख भोगते हैं। असेनी पंचेन्द्रिय पर्यंत विचार करनेकी शक्ति नहीं होती है। अज्ञान व मिथ्यात्व सहित चारित्र बना रहता है। सेनी पंचेन्द्रियके विचार करनेकी शक्ति होती है। तिर्यश्चोंमें क्वचित् कदाचित् किसीको पूर्वजन्म संस्कारसे समझनेकी शक्ति होती है। सैनी पंचेन्द्रिय मानव भलेप्रकार समझ सकते हैं, उन मानवोंमें भी धर्म समझने लायक देश, कुल, बुद्धि व साताकी प्राप्ति होना दुर्लभ होता है। बड़े भाग्यसे उत्तम संयोग मिलते हैं। तौभी मिथ्यात्वके मदमें चूर मानव शरीर व विषयोंमें लीन रहते हुए धर्मकी कुछ भी चिंता नहीं करते हैं। ऐसे मानव भी पशुतुल्य विषयभोगको ही ध्येय बनाकर जीवन बिताते हैं। ऐसे मानवोंका मानव–जन्म वृथा ही चला जाता है। वे पापास्रव करते हुए नरक व तिर्यंचगति बांध लेते हैं। आत्मज्ञानका लाभ जिस मानवको नहीं प्राप्त हुआ वह मूढ़बुद्धि मिथ्या आचरण करके जन्मको धर्म विना निरर्थक खोता है। मिथ्यात्व व अज्ञानके समान कोई हमारा शत्रु नहीं है। ऐसे अज्ञानी मानव विषयोंके दास बने रहते हैं व धनकी प्राप्तिके लिये दूसरोंको ठगनेमें जरा भी ग्लानि नहीं मालूम करते हैं। अचेत-

पना व मिथ्यापना एक अन्धकार है, जहां अपना निजपद जो अपने ही पास है व परमानन्दमय है वह बिलकुल नहीं दिखता है। वे अतीन्द्रिय आनन्दको जो अपने आत्माके ही पास है आत्माका ही स्वभाव है, उसे न पहचानते हुए पशुके समान विषयांध हो जीवन विताते हैं। सारसमुच्चयमें कहा है—

संसारे पर्यटन् जन्तुर्बहुयोनिसमाकुले। शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नोति च दारुणम् ॥ २ ॥
आतध्यानरतो मूढो न करोत्यात्मनो हितं। तेनासौ दुःखसंदोहं परत्रेह च गच्छति ॥ ३ ॥
रागमोक्षोचित नृत्व दुर्लभं विषयलालसैः। कृतं सकलमुत्सृज्य तिर्यग्नरकभाजनम् ॥ २१८ ॥
सामग्री प्राप्य सम्पूर्णां यो विजेतुं न निश्चयं। विषयारिमहासैन्यं तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ २१९ ॥

भावार्थ—खेदकी बात है कि यह प्राणी नाना योनियोंमें जन्म लेकर संसारमें शारीरिक व मानसिक दुःख भोगा करता है। इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा, चिंतवन व निदान इन चार प्रकारके आर्तध्यानमें लीन होकर मूढ प्राणी अपने आत्माका हित नहीं करता है। इसलिये इस जन्ममें व परलोकमें महान् कष्टको पाता है। जिस मानव जन्मको पाकर स्वर्ग व मोक्षकी प्राप्ति की जासक्ती थी उस मनुष्य जन्मको जो मूढ पुरुष विषयोंकी लालसामें तुच्छ सांसारिक सुखके लिये खोदेते हैं वे मरकर तिर्यंच व नरकगतिमें चले जाते हैं। जिस मानवने आत्मकल्याण करके योग्य सर्व सामग्री पाई है, फिर भी जो इंद्रिय विषयरूपी शत्रुकी महासेनाको जीतनेका उद्यम नहीं करता है, उस मानवका जन्म वृथा चला जाता है।

(१६) अशुद्ध, अभाव, मिश्र—ये तीन भाव।

अशुद्ध अभाव संयुक्तं, मिश्र भाव सदा रता।
संसारं भ्रमनं बीजं, त्रिभंगी अशुद्ध उच्यते ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ—(अशुद्ध अभाव संयुक्तं) अशुद्ध भाव व नास्तिक भाव तथा (मिश्र भाव) मिश्र भाव इन तीन भावोंमें (सदा रता) सदा लवलीन रहनेवाले जीव (संसार भ्रमन बीजं) संसारके भ्रमणके बीज हैं। (त्रिभंगी अशुद्ध उच्यते) ये तीन भाव अशुभ कहे जाते हैं।

भावार्थ—यहां इन तीन भावोंका अभिप्राय ऐसा समझमें आता है कि जो व्यवहार सम्यग्दर्शनके

धारक हैं, परन्तु निश्चय सम्यक्तको नहीं प्राप्त हुए हैं उनके सर्व भाव मिथ्यात्व सहित होनेसे अशुद्ध कहे जाते हैं। मन्द कषायसे होनेवाले शुभ भाव तथा तीव्र कषायसे होनेवाले अशुभ भाव सब अशुद्ध भाव हैं। इस प्रकारके भावोंमें सर्व ही जैन तत्वके ज्ञाता मिथ्यादृष्टी गर्भित हैं चाहे वे गृहस्थ हों या साधु हों। वास्तवमें शुद्धात्मानुभव ही एक शुद्धभाव है, वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही सम्यक्चारित्र है। निश्चय रत्नत्रयका लाभ इनको नहीं है, व्यवहार रत्नत्रय तो है। निश्चयके विना सम्यक् व्यवहार भी वह नहीं है। तथापि नास्तिक्य भाव नहीं कहा जायगा। क्योंकि उनको जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा काल इन छ द्रव्योंकी श्रद्धा है। यद्यपि अनुभव पूर्ण नहीं है तथापि वह जैनागमके अनुसार यथार्थ जानता है, उसका चारित्र भी यथार्थ है। परन्तु शुद्ध भावको वह ग्यारह अंगतक पढ़कर भी नहीं प्राप्त कर सकता है। इसके जितने भी भाव हैं, वे मिथ्यात्व मिश्रित होनेसे अशुद्ध हैं। ऐसा भावधारी भी संसार-भ्रमण करेगा।

दूसरा अभाव रूप भाव नास्तिक्यभाव है। ऐसा प्राणी आत्माके अस्तित्वमें श्रद्धान नहीं रखता है। केवल जड़ पदार्थ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुको ही मानता है, इन्हींके संयोगसे ज्ञानका होना मानता है। यह चार्वाक मतका धारी है या कोई शून्यवादी भी इसमें गर्भित है जो कुछ भी वस्तुकी सत्ता नहीं मानता है। इस अभावमें वे सब भी गर्भित हैं जो बिलकुल अज्ञानी हैं, धर्मकी आवश्यक्ता भी नहीं समझते हैं, इनका ध्येय केवल इस जीवनको जिसतरह हो विताना होता है। वे लोकलाजसे बुराईसे बचते व अच्छा काम करते हैं। सामाजिक निन्दाका भय जहां नहीं होता है ऐसे धर्मविहीन लोग तीव्र विषय भोगोंमें फंस जाते हैं। पांच इंद्रियोंके भोग रच पचकर करते हैं, अन्यायसे भी धन कमा लेते हैं। चतुराईसे परका धन छीन लेते हैं। हिंसादि पांचों पापोंमें स्वच्छन्द हो फंसे रहते हैं। मांसाहारसे ग्लानि नहीं करते हैं। शिकार खेलनेमें आनन्द मानते हैं। नास्तिकभाव धारीको धर्मकी बात ढकोसला दीखती है। नर्क स्वर्ग पर, ईश्वर पर उसका विश्वास नहीं होता है।

मिश्रभाव वह है जहां आस्तिक व नास्तिक दोनोंका मिश्रित भाव है। उनको भी शुद्ध आत्माका अनुभव रूप शुद्ध भावका लाभ नहीं है। इस मिश्र भावमें अनेक भाव गर्भित होजाते हैं जो आत्माकी सत्ता तो मानते हैं परन्तु उसकी भिन्न सत्ता नहीं मानते हैं। ब्रह्मकी परछाई मात्र मानते हैं, परलोक मान

करके भी मुक्तिमें उसका अभाव होजाता है। जो जीव कहलाता था वह ब्रह्मका अंश था उसीमें समा जाता है। या इसमें वे मतधारी भी गर्भित हैं जो आत्माको नित्य मानते हैं, परलोक मानते हैं परंतु उसे अल्पज्ञ ही मानते हैं। वह कभी सर्वज्ञ परमात्मा नहीं होसक्ता है ऐसा मानते हैं। इसमें ऐसे मतिधारी भी हैं जो परमात्माको तो मानते हैं और आत्माको भी मानते हैं परन्तु परमात्माको कर्ता व फलदाता एक शासक मानते हैं। उसकी इच्छा विना आत्माका कुछ काम नहीं मानते हैं। शुद्ध होनेपर भी वह परमात्माके बराबर नहीं होगा। कोई मतधारी आत्माको मान करके भी ज्ञानसे भिन्न मानके दोनोंका समवाय सम्बन्ध मानते हैं। आत्माको स्वाभाविक ज्ञानमय नित्य नहीं मानते हैं। मिश्रभावमें ये सब दर्शन गर्भित हैं जो श्री सर्वज्ञ वीतराग श्री जिनेन्द्रके आगमके अनुकूल तत्वोंका स्वरूप न कहकर अन्य प्रकारसे कहते हैं, परंतु परलोकको मानते हैं, इससे सर्वथा नास्तिक नहीं हैं। जैनागमके अनुसार आत्मा स्वभावसे परमात्मा स्वरूप है।

हरएककी सत्ता अनादि व अनन्त बनी रहती है। जगत अकृत्रिम है, अनादि अनन्त है, शुद्धात्मा व परमात्मा निर्विकार कृतकृत्य परका कर्ता भोक्ता नहीं है। आत्मा कर्म पुद्गलोंसे पाप-पुण्यका बन्ध करते हुए भवमें भ्रमण करता है व बन्धसे छूटनेपर मुक्त परमात्माके समान होजाता है। कर्म बन्ध सहित आत्मा अशुद्ध है। तौभी निश्चयनयसे अपने स्वभावमें होनेसे शुद्ध है। आप ही यह आत्मा अपना संसार बनाता है, आप ही मुक्त होता है। मोक्षका मार्ग निश्चय रत्नत्रयरूप एक शुद्धात्मानुभव है। सम्यग्दर्शनसे रहित सर्व ही संसारी जीव अशुद्ध भावधारी है या नास्तिक भावधारी है या निश्चिन भावधारी है। ये तीनों ही प्रकारके भाव कर्मास्रवके द्वार हैं। श्री पद्मनन्दिमुनि एकत्वसप्ततिमें कहते हैं–

अजमेकं परं शान्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्। आत्मानमात्मना ज्ञात्वा तिष्ठेदात्मनि यः स्थिरः॥ १८॥

स एवामृतमार्गस्थः स एवामृतमश्नुते। स एवार्हन् जगन्नाथः स एव प्रभुरीश्वरः॥ १९॥

भावार्थ—जो कोई निश्चयसे अपने आत्माको अजन्मा, एक अकेला, ज्ञान स्वरूप, रागादि उपाधिसे रहित आत्मा ही द्वारा जानकर आत्मामें तिष्ठता है वही मोक्षमार्गमें चलनेवाला है, वही आनन्दरूपी अमृतको भोगता है, वही पूज्यनीय, वही जगतका नाथ है, वही प्रभु, वही ईश्वर है। जैन सिद्धांतमें आत्मा हीके ध्यानसे आत्मा शुद्ध होता है, ऐसा बताया है।

(१७) आलाप, प्रपंच, मिश्र—ये तीन भाव।

आलाप परपंच कृत्वा, विनास दृष्टि रतो सदा।
सुद्ध दृष्टि न हृदये चिंते, त्रिभंगी थावरं पतं ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ—(आलाप परपंच कृत्वा) बकवाद करके, कपट करके, या कपट और बकवाद दोनों करके (विनास दृष्टि रतो सदा) मिथ्यादृष्टि सदा दूसरेके व अपने विनाशके विचारमें लगा रहता है (हृदये सुद्ध दृष्टि न चिंते) अपने मनमें कभी शुद्ध सम्यग्दर्शनका विचार नहीं करता है (त्रिभंगी थावर पतं) इन तीन भावोंसे स्थावर योनिका पात्र होजाता है।

भावार्थ—आलाप बहुत वार्तालापको कहते हैं। प्रयोजनवश कहना मानवका कर्तव्य है। प्रयोजनसे अधिक किसी बातको बहुत बढ़ाकर कहना अपने जीवनके समयको नाश करना है व दूसरोंको सुनाकर उनके जीवनके समयको बरबाद करना है। बहुतसे मानवोंको वृथा बकवाद करनेमें ही आनन्द आता है। वे गोष्ठीमें बैठकर प्रयोजन विना गप्पें कहा करते हैं। धर्म व परोपकारकी चर्चाको नहीं करके अधर्म-भावको बढ़ानेवाली कथाएं किया करते हैं। इन कथाओंसे अपना व दूसरोंका मन रंजायमान करके राग द्वेष मोहको बढ़ा लेते हैं। सांसारिक आलाप अनेक प्रकारके होते हैं। चार विकथाएं प्रसिद्ध हैं—

(१) स्त्रीकथा—स्त्रियोंके श्रृङ्गार, हावभाव, आभूषण, वस्त्र, भोग विलासकी चर्चा करके वेश्या-ओंमें व परस्त्रियोंमें अपना व दूसरोंका भाव रमा देना सो स्त्रीकथा है।

(२) भोजनकथा—स्वादिष्ट भोजनोंकी चर्चा करके मनको प्रसन्न करना। अनेक प्रकारके रसीले पदार्थोंके बनानेकी व खानपानकी ऐसी चर्चा करनी जिससे रसीले पदार्थोंकी तरफ अपनी व दूसरोंकी लोलुपता बढ़ जावे सो भोजनकथा है।

(३) देशकथा—नगर, ग्राम, उपवन, वन, द्वीप, नदी, समुद्र आदि स्थानोंमें क्या २ सुन्दरता है व क्या २ व्यापार वा लेनदेनमें किसने क्या क्या कपट या चतुराई की है व कौन माल कहांसे आता है, कहां विकता है व देशमें कहां डाका पड़ा व कहां किसने मारा पीटा, आदि देशमें गढ़ी हुई घटना-

ओंको इसतरह रंजायमान होके कहना जिससे अपने व दूसरोंमें राग द्वेष उत्पन्न होजावे, आरम्भ परिग्रहके लिये चिंता बढ़ जावे, दूसरोंको ठगनेके भाव पैदा होजावें सो सब देशकथा है। जहां परोपकार व निःस्वार्थ सेवाके भावसे देशकी दशापर व स्वदेश व परदेशकी व्यवस्थापर विचार किया जावे वह देशकथा आलाप नहीं है, वह हितचिंतन रूप है, वह नाशकारी कथा नहीं है।

(४) राजाकथा—राजाओंके ऐश्वर्य, वस्त्राभूषण, वाहन, सेना, रानी, बाग, महल, रूप व उनके द्वारा किये गये विषयभोगोंकी चर्चा इस तरह करना कि अपना व दूसरोंका मन भोगोंके लिये व पांचों इन्द्रियोंके विषयोंके सेवनके लिये उत्सुक होजावे, सो राजाकथा है। युद्धकी मनरंजक कथा करके हिंसामें आनन्द मानना। राजाओंमें वैर विरोध कैसे हो ऐसी चर्चा करके परस्पर युद्ध करानेका मंतव्य बनाना। यह सब स्वपर विनाशकारी आलाप है।

जिस वार्तालापसे धर्म व परोपकार तो कुछ न हो केवल राग द्वेष मोह बढे, शृङ्गार रसकी पुष्टि हो, वह सब आलाप स्वपर दुःखदाई है। कामभाववर्द्धक नाटक, खेल, तमाशे बनाना, देखना, दिखाना व ऐसे उपन्यास नाटक पढ़ना पढ़ाना सब मिथ्या आलाप हैं—जीवनको धर्ममार्गसे हटानेवाला है। अनेक मानव मित्रोंकी गोष्टी रखते हैं तब ऐसी वार्तालापमें समय व शक्तिका नाश करके जीवन नष्ट करते हैं। धर्मकी बात सुननेके लिये व कहनेके लिये समय न होनेका बहाना करते हैं, ऐसे आलापके करनेवालोंके मनमें विषय कषायकी भावनाएं सदा घूमा करती हैं, उनको कभी मनमें यह चिंता नहीं उठती है कि मैं कौन हूं, कैसे जन्मा हूं, मरण क्या वस्तु है, सुख दुख क्या है, क्रोधादि क्या वस्तु है, जाननेवाला कौन है, शुद्धात्माका कभी विचार नहीं उठता है।

(२) प्रपंच—दूसरा समय, शक्तिका घातक व अपना व दूसरोंका नाशक कपट जाल है। कपटीकी भावना अपने विषयोंके लोभवश दूसरोंको विश्वास दिलाकर उनके ठगनेकी रहती है। परका धन कैसे आवे, परस्त्री कैसे वश हो, परका देश कैसे अपने आधीन होजावे, इसतरह अन्याय पूर्वक स्वार्थ-साधनके लिये कपटजालका विचारना, व कपटरूप वचन कहना व कपटभरी क्रिया करना प्रपंच है। झूठा कागज लिखना, झूठा हिसाब बनाना, धरोहरको झूठा कहकर लेलेना, चोरी करना कराना, वध करनेके लिये कपट रचना, कपटसे शिकार खेलना, जूआ रमना, निरन्तर विचार करना कि किसतरह दूसरोंको अपने

विश्वासमें फंसाकर अपना स्वार्थ साधूं, परकी हानिका विनाशका कुछ भी दर्द न रखना, अनाथ विधवाओंका, भोले भाइयोंका धन कैसे हरना, परस्पर भाइयोंमें द्वेष कराकर–पिता पुत्रमें अनमेल कराकर, स्वामी सेवकमें द्विधा भाव कराकर अदालतमें मुकद्दमे चलवा देना, कपटसे धन कमाना यह मायाचार यहां भी परिणामोंको कुटिल रखना है व तिर्यंच आयुका बन्ध कर देता है, प्रायः स्थावर एकेन्द्रिय होजाता है, जहां असमर्थ होकर शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है।

(३) प्रपञ्च और आलापका मिश्रभाव—जहां केवल मनका रंजायमान करना है, ठगनेका भाव नहीं है वह तो आलाप भाव है। जहां परको जालमें फंसानेके लिये नानाप्रकार बकवाद व मीठी मीठी बातें बनाई जावें–सदा ही स्वार्थ साधनके भावोंसे कपटपूर्ण घातक वार्तालाप की जावे वह प्रपञ्च सहित आलाप है। प्रपंच सामान्य है, प्रपंच सहित आलाप विशेष है। कोई२ मानव कथाओंको बनाकर कहनेकी ऐसी चतुराई रखते हैं जिससे बडे प्रवीणोंको भी वे जालके मोहमें फसा लेते हैं, उनको ठगकर बड़ा भारी हर्ष किया जाता है। झूठा मुकद्दमा बनाकर झूठी वार्तालाप व वाद विवादसे झूठको सच प्रमाणित कर देना प्रपचालाप है। कहीं २ मिथ्या धर्मको फलानेके लिये कपट पूर्ण कथाएं रची जाती हैं–पढी व सुनाई जाती हैं। ऐसी कथाओं व शास्त्रोंसे ही पशुबलिमें धर्मकी वासना फैल गई है। रागवर्द्धक कृत्योंको धर्मकृत्य मान लिया जाता है। यह प्रपञ्चालाप मिथ्यादर्शनको प्राप्त कराता है। इन भावोंमें जो रात दिन फँसे रहते हैं वे कभी भी अपने आत्माके स्वभावकी चिन्ता नहीं कर पाते हैं। इन तीनों प्रकारके भावोंसे घोर पापका बन्ध करते हैं। अधिकतर स्थावर योनिमें जाकर निगोद साधारण वनस्पतिकाय होजाते हैं। जहांसे फिर दीर्घकालमें निकलना भी कठिन होजाता है।

श्री ज्ञानभूषण भट्टारक तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

दृश्यते गन्धनादावनुजसुतसुताभीरुपित्राम्बिकासु ग्रामे गेहे खभोगे नगनगरखगे वाहने राजकार्ये ।
आहार्येऽङ्गे वनादौ व्यसनकृषिमुखे कूपवापीतडागे रक्ताश्च प्रेषणादौ यशसि पशुगणे सिद्धचिद्रूपके न ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस संसारमें कोई मनुष्य तो सुगन्धित पदार्थोंमें रागी हैं। बहुतसे छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री, पिता, माता, ग्राम, घर, इंद्रियभोग, पर्वत, नगर, पक्षी, वाहन, राजकार्य, भक्ष्य पदार्थ, शरीर, वन, सात अदान, खेती, कूआ, बावड़ी, सरोवर आदिसे राज करनेवाले हैं। बहुतसे मनुष्य वस्तुओंको

इधर उधर भेजनेमें, यश लाभमें तथा पशु पालनमें मोह करनेवाले हैं। संसार प्रपञ्चमें फँसे हैं यह आलाप है, परन्तु शुद्ध आत्माके स्वरूपके प्रेमी कोई नहीं।

---

(१८) संग, कुसंग, मिश्र—ये तीन भ व।

संगं मूढ मयं दिष्टाः, कुसंगं मिश्र पस्यते।
अलहंतो न्यान रूपेन, मिथ्यात रति तत्पराः ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ—(मूढ मय संग दिष्टाः) मूढ़ताकी बुद्धिसे परिग्रहमें मोहित होनेवाले (कुसंगे मिस्र पस्यते) या अन्याय रूप परिग्रहमें रति करनेवाले तथा न्याय रूप व अन्याय रूप परिग्रहमें मोहित होनेवाले (न्यान रूपेन अलहंतो) सम्यग्ज्ञानको न पाते हुए (मिथ्यात रति तत्परा) मिथ्यादर्शनकी प्रीतिमें तत्पर रहते हैं और पापास्रव करते हैं।

भावार्थ—जहांतक सम्यग्दर्शन नहीं है वहांतक मूढ बुद्धि है। मिथ्यात्वभावसे भी तीन प्रकार परिग्रहका ग्रहण होता है—न्याय पूर्वक, अन्याय पूर्वक, दोनों रूपसे। सम्यक्तीके भी गृहस्थावस्थामें परिग्रहका न्यायपूर्वक ग्रहण है। सर्व ही परिग्रह बन्धमें निमित्त कारण हैं। परिग्रह २४ प्रकारकी है—१० प्रकारकी बाहरी व १४ प्रकारकी अन्तरंग। यद्यपि परिग्रहका लक्षण मूर्छा है या ममत्वभाव है, बाहरी परिग्रह मूर्छा होनेमें निमित्त है इससे परिग्रह कहलाती है।

श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्री अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

मूर्च्छालक्षणकरणात्सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य। सग्रन्थो मूर्च्छावान् विनापि किल शेषसगेभ्य ॥ ११२ ॥
यद्येवं भवति तदा परिग्रहो न खलु कोऽपि बहिरङ्गः। भवति नितरां यतोऽसौ धत्ते मूर्च्छानिमित्तत्वम् ॥ ११२ ॥

भावार्थ—परिग्रहका लक्षण मूर्छाभाव करना यथार्थ है। बाहरी परिग्रहके विना भी जिसके परिणामोंमें ममत्व भाव है वह परिग्रहवान है। इससे ऐसा न समझना कि बाहरी परिग्रह ही नहीं है। बाहरी परिग्रह अन्तरङ्गमें मूर्छा पैदा करनेमें निमित्त कारण है। इसलिये बाहरी परिग्रह भी प्रसिद्ध है। बाहरी परिग्रह १० प्रकार ये हैं—क्षेत्र (खुली भूमि), वास्तु (घर), हिरण्य (चांदी), सुवर्ण (सोना जवाहर),

धन (गौ भैंस), धान्य, दासी, दास, वस्त्र, भांड (वर्तन) चौदह प्रकार अन्तरङ्ग परिग्रह हैं—मिथ्या दर्शन, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

परिग्रहका लेश मात्र भी संसर्ग बन्धका कारण है, इसलिये दशवें सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान पर्यंत कर्मोंका सांपरायिक बन्ध होता है। न्यायपूर्वक धनादि परिग्रहका संग्रह, स्वपरको कम हानिकारक है। अन्यायसे धनादिका संग्रह करना व परवंचकपनेके भाव रखना, बहुत ममताभाव रखके पुत्रादि कुटुम्बके लिये अनुचित काम कर लेना व धर्मकार्योंमें हानि पहुंचा देना, दूसरे प्राणियोंको घोर कष्ट पहुँचाना–अन्यायका धन संग्रह तीव्र पाप बन्धका कारण है। कोई प्राणी न्यायसे भी धन कमाते हैं व अन्यायसे भी धनादि संग्रह करते हैं। व्यापारमें लेनदेनमें तो न्यायसे वर्तते हैं परन्तु अवसर पाकर विधवाओंका धन अन्यायसे छीन लेते हैं व झगडा करके अपने हकसे अधिक धन दूसरोंसे लेते हैं, हिसाब किताबमें चोरी करते हैं, राज्य महसूल नहीं देते हैं, खरीमें खोटी वस्तु मिलाकर खरी कहकर वेचते हैं, भोले ग्राहकको ठग लेते हैं, चतुरको ठीक २ माल देते हैं। कभी न्यायसे कभी अन्यायसे धन संग्रह करते हैं, मिश्रभावमें रत हैं। जिनको सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानका लाभ नहीं है वे परिग्रहके भीतर मोही होते हैं। प्राप्त परिग्रहकी रक्षामें व अप्राप्तके लाभमें बहुत ही ममता रखते हैं। परिग्रह बढ़ता हुआ देखकर बड़े राजी होते हैं। परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान करते रहते हैं, भोगोंकी अति लालसाके कारण भोग सामग्रीमें व उसके उत्पादक धनमें तीव्र लालसा रखते हैं। वे अधिक धनी होनेमें ही अपना उच्चपना मानते हैं। अपनेसे अधिक धनवानोंमें ईर्षाभाव रखते हैं, धनकी तृष्णा कभी कम नहीं कर पाते हैं। जैसे २ धनका लाभ होता है, तृष्णा अधिक धन पानेकी बढ़ जाती है। परिग्रहकी चितामें रात दिन लगे रहनेसे वे धर्मकी कथनी सुनते ही नहीं हैं। यदि सुनते हैं तो ध्यान नहीं लगाते हैं। धर्मकी तरफ विलकुल भी लक्ष्य नहीं देते हैं। कितने ही धनका सग्रह करनेमें ही लगे रहते हैं–न धनको खरचते हैं न दानमें लगाते हैं। केवल एकत्र करनेमें, रक्षा करनेमें लगे रहते हैं, बहुत मूर्छासे नरकायुको बांध लेते हैं। सम्यग्दृष्टी गृहस्थ परिग्रह रखते हुए भी आसक्त नहीं होता है, पुण्यका फल समझकर उसके द्वारा दान धर्म व परोपकार करता है। परिग्रहके ममत्वमें पड़कर धर्मकार्यका नाश नहीं करता है, सन्तोषी रहता है। धनादिके वियोगमें पुण्य क्षय मानकर आर्तध्यान नहीं करता है। जब पूर्ण वैराग्य होता है तब जीर्ण तृणके समान परिग्रहका

त्याग कर देता है। परिग्रह रहितता ही पूर्ण वीतराग होनेके लिये आवश्यक है।

सारसमुच्चयमें कहा है—

संगात्संजायते गृद्धिर्गृद्धौ वाछति सचयम्। संचयाद्वर्धते लोभो लोभाद्दु खपरंपरा ॥ २३२ ॥

अर्थो मूलमनर्थानामर्थो निर्वृतिनाशनम्। कषायोत्पादकश्चार्थो दु खाना च विधायकः ॥ २३६ ॥

तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति हित वा यदि वाहितम्। सन्तोषाञ्जनमासाद्य पश्यन्ति सुधियो जना. ॥ २३९ ॥

तृष्णानलप्रदीप्ताना सुसौख्यं तु कुतो नृणाम्। दु खमेव सदा तेषा ये रता धनसचये ॥ २४१ ॥

भावार्थ—परिग्रहके होनेसे लोलुपता होती है, लोलुपता होनेसे अति परिग्रहका संचय चाहता है, परिग्रहके अधिक संचयसे लोभ बढ़ता है, लोभसे परम्परा दुःख होता है। धन सर्व अनर्थोंका मूल है, धन मोक्षका बाधक है, धन कषायोंको पैदा करनेवाला है, दुःखोंको जन्म देनेवाला है, धनकी तृष्णामें जो अन्धे हैं वे स्वपर हित या अहितको नहीं देखते हैं तब बुद्धिमान जन सन्तोषरूपी अंजन लगाकर हित अहितका विचार रखते हैं। जो मानव तृष्णाकी आगमें जलते हैं उनको सुख कहांसे होसक्ता है? जो धनके संचयमें रत हैं उनको सदा ही दुःख है। जो आस्रवसे बचना चाहें उनको परिग्रहका सङ्ग त्यागना चाहिये। जबतक न छूट सके तबतक न्यायसे धनादि ग्रहण करना चाहिये, अन्यायका धन कभी नहीं लेना चाहिये। धन होनेपर उदारभाव रखकर दान व परोपकारमें लगाना चाहिये। कम व अधिक पुण्यके उदयसे जो मिले उसमें सन्तोष रखना चाहिये।

(१९) आशा, स्नेह, लोभ–ये तीन भाव।

आशा स्नेह आरक्तं, लोभं संसार बंधनं।
अलहन्तो न्यानरूपेन, मिथ्या माया विमोहितं ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ—(आशा स्नेह आरक्तं) जो आशा तृष्णामें व संसारके प्रेममें लवलीन रहते हैं (लोभं संसार बन्धन) संसारका बन्धन करनेवाले लोभमें पड़ जाते हैं (अलहन्तो न्यानरूपेन) आत्मज्ञानको नहीं पाकर (मिथ्या माया विमोहित) मिथ्यादर्शन तथा मायाचारसे मूढ़ बने रहते हैं।

भावार्थ—यहां आशा, स्नेह, लोभ इन तीन भावोंको कारण-कार्यकी अपेक्षासे बताया है। तीनों ही लोभ कषायकी ही पर्याय हैं। इंद्रियोंके भोगोंकी तृष्णाको आशा कहते हैं। यह भीतर छिपी हुई रहती है। हरएक प्राणी तीन लोककी सम्पदाको पावे तौभी न अघावे इतनी अधिक तृष्णा है।

श्री आत्मानुशासनमें गुणभद्राचार्य कहते हैं—

आशागर्त्त: प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्। कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता ॥ ३६ ॥

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः। चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित् ॥ ३९ ॥

भावार्थ—प्रत्येक प्राणीमें आशारूपी गड्ढा इतना गहरा है कि सर्व जगतकी सम्पदा उसके लिये एक परमाणुके बराबर है तब किसके पास कितनी आसकती है। इसले तेरा विषयोंकी आशा करना वृथा ही है। आंखोंके होते हुए भी जो विषयोंमें अन्धा है वह आंख रहित अन्धेसे भी महान् अन्धा है। आंखसे अन्धा तो केवल जानता ही नहीं है। विषयोंके मोहमें जो अन्धा है वह तो बिलकुल नहीं समझता है। आशाकी दाहसे पीड़ित होकर इंद्रियोंके विषयोंकी प्राप्तिके लिये आकुलित होता है। सांसारिक पदार्थोंमें धनादिमें तीव्र मोह रखता है। जिनसे कुछ भी स्वार्थ सधता जानता है उनसे स्नेह करता है। जैसे २ सम्पदा मिलती है व इच्छित पदार्थ प्राप्त होते हैं, वैसे वैसे लोभ कषाय बढ़ जाती है। तब धनादि पदार्थोंका वियोग असह्य होजाता है। धनको व्यय करते हुए बड़ी बाधा मानता है। मिथ्यादृष्टी विषयोंकी आशासे जगतके सुन्दर भोगोंसे बहुत स्नेह रखता है। स्वर्गादिकी सम्पत्ति चाहता है। तीव्र लोभके वशीभूत हो, न्याय अन्यायका विचार छोड़ बैठता है। लोभाधीन होकर जप तप आदि भी साधन करता है कि मैं मरकर चक्री, नारायण, प्रतिनारायण, राजा महाराजा होजाऊँ। लोभ ही संसारका बन्धन है। चारों कषायोंमें गाढ़ कषाय लोभ है, लोभ क्षयके पीछे नाश होता है, लोभके कारण मायाचार करता है, कोई हानि पहुँचाता है तब क्रोध करता है, धनादि होनेपर मानकर लेता है, लोभके वशीभूत होकर सर्व पापोंके करनेमें प्रवृत्त होजाता है। अहंकार व ममकारमें फँसा रहता है। कुटुम्ब परिवारका तीव्र मोही होजाता है। विषयांध होकर रातदिन मोहके कामोंमें लगारहता है। अपने आत्माकी ओर कुछ भी विचार नहीं करता है। जिनवाणीको न पढ़ता है, न सुनता है। तत्वज्ञानको पाए विना सम्यग्दर्शनको नहीं पैदा कर सकता है। तृष्णामें ही विना पूरी किये हुए मरता है, दुर्गतिमें चला जाता है। ऐसा मोही बहुत

सम्पत्तिवान होनेपर भी दुःखी रहता है। सन्तोषी परम सुखी है। खेद है कि वह अज्ञानी सन्तोषको नहीं पाता है। तृष्णानदीका पार वे ही पाते हैं जो सम्यग्ज्ञानी हैं व आत्मीक सुखके लाभ करनेवाले हैं। जैसा स्वयंभूस्तोत्रमें समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

आयत्या च तदात्वे च दुःखयोनिर्निरुत्तरा। तृष्णा नदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया॥ ९२॥

भावार्थ—तृष्णा नदी इस जन्ममें भी दुःखोंको पैदा करनेवाली है व परलोकमें भी दुःख देनेवाली है इसको पार करना बड़ा ही कठिन है। परन्तु हे भगवान् अरनाथ! आपके वैराग्यपूर्ण आत्मज्ञानसे इसका पार पालिया है। आपने तृष्णाको जीत लिया है। ज्ञानार्णवमें शुभचन्द्राचार्य कहते हैं—

अतृप्तिजनकं मोहदाववह्नेर्महेन्धनम्। असातसन्ततेर्बीजमक्षसौख्यं जगुर्जिनाः॥ ११॥

वर्द्धते गृद्धिराश्रन्तं सन्तोषश्चापसर्पति। विवेको विलयं याति विषयैर्वंचितात्मनाम्॥ १८॥

भावार्थ—यह इंद्रियोंका सुख तृप्तिको नहीं देता है, मोहरूपी दावानलको बढ़ानेके लिये महान् ईंधन है। असाताकी परिपाटीका बीज है, ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है। जिनका आत्मा विषयोंसे ठगाया गया है उनकी विषयलोलुपता निरन्तर बढ़ती जाती है, सन्तोष चला जाता है तथा विवेक भी भाग जाता है। अतएव आशा स्नेह व लोभ त्यागने योग्य हैं। वे महान् आस्रवके कारण हैं। सम्यक्ती आशाको पार कर लेना है। यह विषयसुखको तुच्छ जानता है। आत्मीक सुख हीको उपादेय मानता है। वह सदा सन्तोषी रहता है। अधिक भोग सम्पदा मिले तो उन्मत्त नहीं होता है। कम मिले तो आकुलित नहीं होता है।

(२०) लाज, भय, गारव—ये तीन भाव।

लाज भयं हृदयं चिंते, गारव राग मोहित।
सम्यक्त सुद्ध तिक्तंति, मिथ्या माया त्रिभङ्गयं॥ २८॥

अन्वयार्थ—(हृदयं लाज भय चिंते) जो मिथ्यादृष्टी अज्ञानी मनमें लोकलाजकी या किसी प्रकारके भयकी चिन्ता करते हैं (गारव राग मोहित) तथा अपने गौरव या अभिमानके रागसे मोहित हैं (सम्यक्त

सुद्ध तिक्कंति) वे कभी शुद्ध स्वभावको नहीं पाते हैं (मिथ्या माया त्रिभंगय) वे मिथ्यादर्शन मायाचारमें मगन होकर इन तीन भावोंमें गृसित रहते हैं।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीके कर्मके आस्रवके कारण ये तीन भाव भी होते हैं-लाज, भय, गारव। सम्यग्दृष्टी केवल धर्म व न्यायकी दृष्टिसे मन वचन कायका वर्तन करता है। उसको आत्मानुभव या वैराग्य प्रिय है। सम्यक्तीके भीतर प्रशम (शांत भाव), संवेग (संसारसे वैराग्य व धर्मानुराग), अनुकम्पा (प्राणी मात्र पर दया) तथा आस्तिक्य (परलोकमें श्रद्धा) ये चार भाव नियमसे होते हैं। इन भावोंके आधारपर वह धार्मिक व लौकिक काम करता है। धर्मकी व परोपकारकी भावनाके सामने वह लोकलाज, भय व गारवको महत्व नहीं देता है। मिथ्यादृष्टी संसारासक्त है, लौकिक जनोंमें प्रतिष्ठा चाहता है अतएव बहुतसे काम लोकलाजसे शक्ति न होनेपर भी कर लेता है, पीछे कष्ट उठाता है। जैसे किसी लड़केका विवाह करना है, वह विचारता है मैं बडा कुलवान कहलाता हूँ, अच्छीतरह द्रव्य खरचकर यदि विवाह नहीं करूगा तो मुझे लाज आयगी, दश भाइयोंमें मैं क्या मुंह दिखाऊंगा, इस कारण शक्तिके न होनेपर भी कर्ज लेकर खर्च कर डालता है, पीछे कर्जका दुःख भुगतता है। लोकलाजके कारण बहुत लोगोंको जो काम करता देखता है आप भी करने लगता है। मानता है न करूंगा तो लाज जायगी जैसे-दावात, कलम, रुपयेकी थैली, तलवार, घोड़ा, गाय, दिहली, चाक, कूप, वावड़ी आदि पूजना। दीवालीमें लौकिक जनोंको जूआ खेलते देखकर आप भी खेलने लग जाता है। लोकलाजके कारण मिथ्यात्वमें व अपव्ययमें व अनर्थ कार्यमें फंस जाता है। अमुक वस्त्र व आभूषण न बनाऊँगा तो मेरी स्त्री पुत्री आदिकी लाज जायगी। कष्ट सहकर भी लोक दिखावेके काम करता रहता है। कभी कभी मिथ्यादृष्टी लोकलाजसे कुमार्गसे भी बचता है। जिस समाजमें वह रहता है वहां जिन बुराईयोंको बुरा समझा जाता है, जिनके करनेसे लाज जाती है, उनको वह लाजके भावसे नहीं करता है जैसे-मदिरा न पीना, भांग न पीना, वेश्या व परस्त्रीसेवन न करना, असत्य न बोलना, रात्रिको न खाना, पानी छानकर पीना, नित्य चैत्यालय जाना, पर्वोंमें उपवास कर लेना, पूजा भक्ति स्तुति पढ़ना। यदि वह लाजके भावसे न करके परिणामोंकी उज्वलता व अहिंसा धर्मके पालनके भावसे करता तो अधिक पुण्यबन्ध करता। लाजके भाव होनेसे अल्प पुण्य बांधता है। मिथ्यादृष्टी नरकके व पशुगतिके दुःखोंसे भय करके पापसे बचता है तथा

पुण्य सेवन करता है। सम्यक्तीके ऐसा परलोकका भय नहीं होता है। मिथ्यादृष्टीको सात प्रकारका भय लगा रहता है उनके वशीभूत हो कभी योग्य कभी अयोग्य काम कर डालता है—

(१) इस लोकका भय—लोग कहीं निन्दा न करें नाम न रक्खे। (२) परलोकका भय—परलोकमें नर्कादिमें न चला जाऊँ। (३) वेदना भय—कहीं रोग न होजावे। (४) अरक्षा भय—मेरा कोई रक्षक नहीं है, क्या करूं। (५) अगुप्ति भय—मेरी सम्पत्ति कोई चुरा न लेजावे। (६) मरण भय—कहीं मरण न होजावे। (७) अकस्मात् भय—कहीं कोई अचानक वज्रपात न होजावे, मकान न गिर पड़े। मिथ्यादृष्टी इन बातोंसे निरन्तर डरता है। कभी२ मिथ्या धर्मका साधन भी करने लग जाता है कि मेरा परलोक ऐश्वर्यशाली हो या लोक मेरी प्रशंसा करें। न करूँगा तो निन्दा करेंगे या मेरा रोग मिट जावे, मुझे मरण न सतावे, कोई माल न चुरावे, मेरी रक्षा बनी रहे, अकस्मात् न होजावे, कुदेवाराधन करने लगता है कुतप करता है, मंत्रजाप करवाता है। सम्यग्दृष्टी यथायोग्य रोगादि न होनेका व रक्षाका यत्न करता है परन्तु निर्भय रहता है कि यत्न करते हुए भी यदि पापके उदयसे कोई कष्ट होगया तो अपना ही बांछा कर्म झड़ा। वह वीर सिपाहीके समान साहसी रहता है। सम्यक्ती विचारता है जैसा पूज्यपादाचार्यने इष्टोपदेशमें कहा है—

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा। नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवेतानि पुद्गले ॥ २९ ॥

भावार्थ—मैं आत्मा हूँ, मेरा मरण नहीं है, फिर मरनेसे क्या भय? रोग शरीरमें है आत्मामें नहीं, तब मुझे क्या कष्ट? न मैं बालक हूँ न वृद्ध हूँ न युवान हूँ। शरीर मात्र न बालक न युवा न वृद्ध है।

समयसार कलशमें कहा है—

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियत व्यक्तेति वस्तुस्थितिर्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः।

अस्यात्राणमतो न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो, निःशङ्क सतत स्वयं स सहज ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २९–७ ॥

भावार्थ—जो सत् वस्तु है उसका कभी नाश नहीं होता है, यह वस्तुकी मर्यादा है। मैं ज्ञान स्वरूप हूँ। ज्ञान सत् है, इसकी परसे क्या रक्षा करनी। इसको कोई आत्माका भय नहीं है। ज्ञानी सहज ज्ञानका स्वयं सदा निःशंक होके अनुभव करता है।

मिथ्यादृष्टी कभी लोकभयसे अच्छे काम भी कर लेता है। यदि मैं न करूँगा लोक मुझे बुरा समझेंगे। मिथ्यात्वीको गारव दोष भी होजाता है। रस गारव, ऋद्धि गारव, सात गारव, तीन गारव हैं। रसायन बनानेका अभिमान या शृङ्गार रस आदि कथा करनेका अभिमान रस गारव है। धनका अभिमान या किसीको कोई तपसे चमत्कार होजावे उसका अभिमान ऋद्धि गारव है। असाता न होनेपर साताकी वेदना होनेपर सातामई जीवनका अभिमान सात गारव है। इसतरह क्षणिक पदार्थोंके होनेपर भी मिथ्या ही अभिमान कर लेता है जब कि सम्यग्दृष्टी नहीं करता है, इस तरह मिथ्यात्वी जीव लाज भय गारवके भावोंसे परिणतियोंको मला रखता है, आत्मानुभवरूप शुद्ध सम्यग्दर्शनको नहीं पासक्ता है। मायाचार व मिथ्याभावमें रहकर पापाश्रव करता है।

श्री वट्टकेरस्वामी मूलाचार द्वादशानुप्रेक्षामें कहते हैं—

रागो दोसो मोहो इंदियसण्णा य गारवकसाया। मणवयणकायसहिदा दु आसवा होंति कम्मस्स ॥ ३८ ॥

भावार्थ—राग द्वेष, मोह, पांच इंद्रियोंके विषय, चार संज्ञाएं आहार, भय, मैथुन, परिग्रह; तीन प्रकार गारव या अभिमान व क्रोधादि चार कषाय व मन वचन काय ये सब कर्मोंके आस्रवके द्वार हैं।

---

(२१) गम, आगम, प्रमाण—ये तीन भाव।

गमस्य अगमं कृत्वा, प्रमाणं मिथ्या उच्यते।
भयस्य भवदुःखानं, भाजनं त्रिभङ्गी मिस्रतं ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ—(गमस्य अगमं कृत्वा) जानने योग्य सो गम्य है, जिसका जीवन कठिन है सो अगम्य है। इन दोनोंको तथा (प्रमाण मिथ्या उच्यते) जिससे जान जावे उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। ऐसे तीनोंको मिथ्या कहनेवाला (भय दु खानं भयस्य भाजनं) संसारके दु खोंका व भयका पात्र होता है (त्रिभंगी मिस्रतं) ये तीनों मिलके पापास्रवके कारण है।

भावार्थ—जिनका जानना सुगम है ऐसे इंद्रियगोचर स्थूल पदार्थ हैं। जैसे रूखा, चिकना, ठण्डा,

गरम, कोमल, कठोर, हलका, भारी पदार्थ; मीठा, चरपरा, कडुवा, खट्टा, कसायला पदार्थ; सुगन्ध, दुर्गंधमय पदार्थ; सफेद, काला, नीला, लाल, पीत वर्णवाले पदार्थ; सुस्वर दुस्वर शब्द इनका स्वरूप भी मिथ्या जानता है। इंद्रियोंसे अगोचर सूक्ष्म पदार्थ अगम्य है। जैसे परमाणु दूरवर्ती मेरुपर्वत स्वर्ग नर्कादि दीर्घकाल पहले हुए। ऋषभादि राम रावणादि तथा अमूर्तीक पदार्थ आत्मा, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, कालाणु, इनका भी स्वरूप मिथ्या जानता है। उसका ज्ञान भी मिथ्या है जिससे जानता है। ऐसा मिथ्याज्ञानी आत्मा व अनात्माका सच्चा स्वरूप न जानकर धर्मका भेद न पाकर संसार-भ्रमणसे छूट नहीं सकता है। अनेक प्रकार दुख व भयको उठाता है।

कुमति कुश्रुत ज्ञानका स्वरूप १२–१३ गाथाके वर्णनमें कहा जाचुका है। मिथ्यादर्शनके उदयसे अज्ञानीको पदार्थोंका स्वरूप सच्चा नहीं भासता है। उसको न तो सच्चे आगमका संयोग मिलता है न सच्चे गुरुका। इसलिये अपनी कल्पनासे व मिथ्या आगम या गुरुके उपदेशसे पदार्थोंको औरका और जानता है। कोई तो सर्व जगतको एक ब्रह्मकी माया मान लेते हैं, ब्रह्मरूप ही है, भ्रमसे और रूप दिखता है। कोई ईश्वरको शासक मानके अपनेको उसके आधीन मानते हैं, कोई परलोकको न मानकर नास्तिक मती रहते हैं। कोई विषयसुखको ही सुख मानते हैं, आत्मीक सुखकी तरफ दृष्टि ही नहीं जाती है। कोई पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके परमाणु भिन्न ही मानते हैं। कोई आत्माको जड़से उत्पन्न ही मानते हैं। अविनाशी चेतन सतरूप आत्माको नहीं मानते हैं। कोई केवल प्रत्यक्ष प्रमाणको ही मानते हैं, अनुमान या आगमको नहीं मानते हैं। कोई देवका स्वरूप सरागी ही मानते हैं, वीतराग सर्वज्ञ नहीं मानते हैं। इसतरह भिन्न २ प्रकारके मतोंको रखते हुए गम्य व अगम्य–स्थूल व सूक्ष्म पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान नहीं कर पाते हैं, उनको सच्चा भेद विज्ञान व आत्मीक सुखकी प्रतीति नहीं हो पाती है। वे विपरीत श्रद्धानी संसारासक्त बने रहते हैं, राग द्वेष मोहके जालसे मुक्त नहीं हो पाते।

सर्वज्ञ वीतराग भगवानने जैसा बताया है वैसा श्रद्धान होनेकी आवश्यक्ता है जिससे यह विदित हो कि यह आत्मा आप ही अपने भावोंसे पाप व पुण्य बांधता है व आप ही अपने शुद्ध भावोंसे कर्मोंसे छूट सकता है। यह आत्मा स्वभावसे परमात्मारूप है। शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य, आनन्द आदि गुणोंका समुदाय है। इसीके शुद्ध स्वरूपके श्रद्धान ज्ञान व चारित्रको रत्नत्रय धर्म कहते हैं। वह धर्म

स्वानुभव स्वरूप है, सच्चा सुख अतीन्द्रिय है, जो स्वानुभवसे प्राप्त होता है। संसार असार है, शरीर अपवित्र है, भोग रोगके समान हैं, स्वाधीनता ही ग्रहण करनेयोग्य है, पराधीनता त्यागनेयोग्य है। ऐसा सच्चा श्रद्धान जिनवाणीके द्वारा तत्वोंको जाननेसे होसकेगा, कोई भ्रम नहीं रहेगा। पदार्थोंका सच्चा स्वरूप जाननेके लिये जैनके न्याय ग्रन्थोंका अवलोकन करना योग्य है। जैसे प्रमेयकमलमार्तंड, अष्टसहस्री, राजवातिक, श्लोकवार्तिक, आप्तपरीक्षा, न्यायदीपिका। ज्ञान प्रमाण है, ज्ञेय प्रमेय है। ज्ञान व ज्ञेयका यथार्थ ज्ञान होनेकी जरूरत है। दर्पणमें पदार्थ झलकते हैं, दर्पण अलग है पदार्थ अलग है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है, उसमें छः द्रव्यमई जगत जिसकी सत्ता अपने आत्मासे भिन्न है वह झलकता है। कुमति, कुश्रुत ज्ञानी आत्मा व अनात्माको, संसार व मोक्षको, संसारमार्ग व मोक्षमार्गको ठीक २ ही जानता है। अतएव उन्मत्तकी तरह कभी सत्यको सत्य, कभी असत्यको सत्य मान लेता है, कभी कहता है ईश्वरकी मरजीसे सब कुछ होता है, कभी कहता है अपने कर्मोंके फलसे भला बुरा होता है, उनको गाढ़ प्रतीति एक सत्य बातकी नहीं है। स्याद्वादसे पदार्थोंको अपेक्षाके द्वारा नित्य, अनित्य, एक, अनेक, आदिरूप जानना चाहिये और तब आत्मज्ञानको पाकर संयमके सहारे स्वानुभव करना चाहिये।

जैसा समयसारकलशामें कहा है—

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसयमाभ्या यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्री—पात्रीकृत. श्रयति भूमिमिमां स एक. ॥ २१–११ ॥

भावाथ—जो कोई स्याद्वादके ज्ञानमें कुशल है और संयममें निश्चल है, इसतरह सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रके साथ निरन्तर उपयोग लगाकर अपने आत्माकी आप ही भावना करता है वह ज्ञान व चारित्रकी मित्रताको रखकर इस मोक्षमार्गपर चलनेका पात्र होता है।

मूलाचार प्रत्याख्यान अधिकारमें कहा है—

जिणवयणे अणुरत्ता गुरुवयणं जे करंति भावेण। असवल असंकिलिट्ठा ते होंति परित्तसंसारा ॥ ७२ ॥
जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूद। जरमरणवाहिवेयणखयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ ९९ ॥

भावार्थ—जो साधु जिनवाणीमें परम भक्तिवन्त हैं तथा जो भक्तिपूर्वक गुरुकी आज्ञाको मानते हैं वे मिथ्यात्वसे अलग रहते हुए व शुद्ध भावोंमें रमते हुए संसारसे पार होजाते हैं। जिनवाणीका मनन

एक ऐसी औषधि है जो इंद्रिय विषयके सुखसे वैराग्य पैदा करानेवाली है, अतीन्द्रिय सुख रूपी अमृतके पिलानेवाली है। जरा मरण रागादिके सर्व दुःखोंको क्षय करनेवाली है। स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुः बद्धश्च मुक्तश्च फल च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्त नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे सम्भवनाथ! आपने अनेक धर्म स्वरूप वस्तुको स्याद्वादसे बताया है, इसलिये आपके बताए हुए तत्वज्ञानमें बन्धतत्व, मोक्षतत्व व बन्ध व मोक्षका कारण बन्ध व मुक्त आत्माका स्वरूप व मोक्षका फल यथार्थ सिद्ध होता है। जो वस्तुको एक धर्मवाली मानते हैं, उनक मतमें ये सब बातें सिद्ध नहीं होती हैं। अतएव आत्मा ही यथार्थ उपदेश दाता है।

(२२) अनृत, स्तेय, काम–ये तीन भाव।

ऋतं अनृतं माने, स्तेयं पद लोपनं।
कामनं असुह भावस्य, त्रिभङ्गी नरयं पतं ॥ ३० ॥

अन्वयार्थ—(ऋत अनृतं माने) जो कोई सत्य पदार्थको असत्य जानता है (पद लोपनं स्तेय) ग्रन्थके पदका अर्थ छिपाकर चोरी करता है (असुह भावस्य कामनं) अशुद्ध भावोंकी कुशीलादिकी कामना करता है (त्रिभंगी नरयं पतं) इन तीन–अनृत, स्तेय व काम भावोंमें रत प्राणी नरकका पात्र है।

भावार्थ—पदार्थका जो निज मूल स्वभाव है वही सत्य है, नित्य है, अमिट है, केवल है। उसको औरका और जानना असत्य है। यह जगत जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन छः मूल व स्वतंत्र द्रव्योंका समुदाय है। इनमेंसे धर्म, अधर्म, आकाश एक एक है। कालाणु असंख्यात हैं, जीव व पुद्गल अनन्त हैं। हरएक जीवकी सत्ता सदा भिन्न २ ही रहती है। जीवका मूल स्वभाव शुद्ध है, ज्ञाता दृष्टा है, वीतराग है, आनन्दमय है व अमूर्तीक है। यह स्वभावसे ईश्वर स्वरूप है, इसके ऐसे स्वभावको जानकर कहना कि यह रागी द्वेषी है, अज्ञानी है, पाप पुण्यका कर्ता है, फल भोक्ता है, सो जीव तत्वका असत्य ज्ञान है। यदि ऐसा जाने कि कर्म-संयोगसे रागी द्वेषी होरहा है, मूल स्वभावसे यह वीत-

रागी है तब तो सत्य ज्ञान है, परन्तु एकांगी ज्ञान असत्य है। पर्यायकी अपेक्षा अशुद्ध है, द्रव्यकी अपेक्षा शुद्ध है, ऐसा जाने तो असत्य नहीं है। परन्तु एकांतसे शुद्ध ही जाने व अशुद्ध ही जाने सो असत्य है। इसीतरह शुभ कार्य जप तप व्यवहार चारित्र पुण्यबन्धका कारण है। उसको मोक्षका कारण जानना सो असत्य है। मोक्षका कारण निश्चय चारित्र स्वात्म रमणरूप है, इसको न पहचाने तो मोक्षमार्गको उसने असत्य जाना है। इसी तरह हिंसामय पशुबलि आदिको धर्म मान लेना असत्य है। विषय कषाय पोषक सर्व क्रिया धर्म नहीं है, इसे धर्म मान लेना असत्य है। असत्य बोलकर जगतको ठगना यह तो प्रगट असत्य पाप है।

जिनेन्द्रकी आज्ञा प्रमाण वस्तु स्वरूपको न कहकर औरका और कहना व जिनवाणीके भावको छिपाना धर्मकी चोरी है। जैसे परिग्रह धारीको भी जैन साधु कहना तथा ऐसी हठ करना कि जिन आगमकी आज्ञा इसी प्रमाण ही है। अजका अर्थ न उगनेवाले जौका न करके बकरा करना भी पदका लोप चोरी है। प्रगट छिप करके व लुटवा करके धनादि चुराना तो चोरी ही है। विश्वासघात करके धन छीनना, देव द्रव्य या धर्मका द्रव्य चुराना, मन्दिरके उपकरण चुराना, यह सब चोरी है। शुद्ध भाव एक शुद्धोपयोग है, इसीको मोक्षमार्ग न समझकर अशुद्ध भावको या शुद्धोपयोगको मोक्षमार्ग समझकर शुभोपयोगकी इच्छा करना काम है। ब्रह्मचर्यका घात कर कुशील संयमसें लीन होना कामभाव है। सर्व इंद्रियोंके विषयोंकी कामना करना काम है। जो कोई जगतमें असत्य बोलते हैं, चोरी करते हैं, परस्त्री व वेश्यागमन करके कुशील सेवते हैं व अन्य विषयोंको अभावपूर्वक सेवते हैं वे तीव्र राग व परिग्रहभावसे नरकायु बांधकर नर्क चले जाते हैं। जो इस असत्य संसारको सत्य जानकर धर्मका लोप करते हैं, धर्मका साधन नहीं करते हैं व रात दिन विषयभोगोंकी कामना किया करते हैं वे भी नरकके पात्र होते हैं। जो जिनेन्द्रकी आज्ञाको लोपकर मनमाना धर्म पालकर अपनेको गुरु मानते हैं व दूसरोंको रागभावमें फँसाकर धन कमाते हैं व स्वच्छन्द हो विषयसेवन करते हैं ऐसे धर्मके ठेकेदार गद्दीदार महंत आदि नरकके पात्र हैं। जगतमें झूठ, चोरी व कुशील बड़े भारी पाप हैं, जिनसे इसलोकमें भी अपयश होता है, दंड मिलता है व परलोकमें भी दुर्गति होती है। ज्ञानार्णवमें श्री शुभचन्द्राचार्य कहते हैं—

व्रतश्रुतयमस्थानं विद्याविनयभूषणम्, चरणज्ञानयोर्बीजं सत्यसंज्ञ व्रत मतम् ॥ २७-९ ॥

भावार्थ—यह सत्य नामका व्रत सर्व व्रतोंका, शास्त्रका व संयमका स्थान है, विद्या व विनयका भूषण है। चारित्र व ज्ञानका बीज है। असत्य सर्व पापोंका मूल है।

विषयविरतिमूल संयमोद्दामशाखम्, यमदलशमपुष्पं ज्ञानलीलाफलाढ्यम्।
विबुधजनशकुन्तैः सेवितं धर्मवृक्षं दहति मुनिरपीह स्तेयतीव्रानलेन ॥ २०-१० ॥

भावार्थ—जिस धर्म वृक्षकी जड़ विषयोंसे विरक्ति है, जिसकी बड़ी शाखा संयम है, जिसके यम नियमादि पत्र हैं, उपशम भाव पुष्प हैं, ज्ञानादि जिसका फल है, जिसकी सेवा पंडितजन रूपी पक्षी करते हैं ऐसे धर्मवृक्षको मुनि भी हो तौ भी चोरीरूपी तीव्र आगसे भस्म कर डालता है।

मूलाचार द्वादशानुप्रेक्षामें कहा है—

दुग्गमदुल्लहलाभा भयपउरा अप्प कालिया लहुया। कामादुक्खविवागा असुहा सेविज्जमाणा वि ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इंद्रिय सम्बन्धी काम भोग बड़ी कठिनतासे व परिश्रमसे मिलते हैं। उनमें भय भरा रहता है। बहुत थोड़े काल टिकनेवाले हैं, असार हैं, तथा कर्म बन्धकारक हैं, दुःखफलको देनेवाले हैं। अतएव सेवन किये जानेपर भी अशुभ हैं, हानिकारक हैं। सारसमुच्चयमें कहा है—

यावदस्य हि कामाग्निहृदये प्रज्वलत्यलम् आश्रयन्ति हि कर्माणि तावदस्य निरन्तरम् ॥ ९४ ।

भावार्थ—जबतक कामकी आग मनमें जलती रहती है तबतक इस जीवके निरन्तर कर्मोंका आस्रव होता है।

---

(२३) अन्यान, रति, मिश्र–ये तीन भाव।

अन्यानी मिथ्य भावस्य, रतिं मूढ भयं सदा।
मिस्रस्य दृष्टिं मोहंधं, त्रिभगी दुर्गति कारनम्॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ—(अन्यानी मिथ्य भावस्य रतिं मूढ भयं सदा) अज्ञानी मिथ्यात्व भावमें रति करके सदा मूढ़-मई भाव रखता है (मिस्रस्य दृष्टि मोहधं) अज्ञान और रतिका जहां मिश्रण है वहां दर्शनमोहसे अंधापना है (त्रिभगी दुर्गति कारनम्) अज्ञान, मिथ्यात्व रति तथा मिश्र–ये तीनों भाव दुर्गतिमें पटकनेवाले हैं।

भावार्थ—अज्ञान वा अविद्या संसारका मूल है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तक सर्व ही प्राणी अज्ञानी होरहे हैं। आत्मा और अनात्माका भेदज्ञान उनको प्राप्त नहीं है। इसी कारण उनकी रति या प्रीति निरन्तर पांचों इंद्रियोंके विषयभोगोंमें बनी रहती है। जहां अज्ञान तथा विषय रति दोनों ही हैं वहां मिश्र भाव है अर्थात् ज्ञानावरणका उदय और दर्शनमोहका उदय साथ२ होकर अज्ञानके साथ मिथ्यात्व भाव होता है। जिनको शास्त्रोंका ठीक२ ज्ञान नहीं है, जैनागमको ग्यारह अङ्गतक जानते हैं और उनकी रति विषयवासनासे नहीं हटी है, अतीन्द्रिय सुखका प्रेम पैदा नहीं हुआ है, उनके ज्ञानके साथ विषय रति है। यहां अज्ञानके साथ रतिका मिश्र बताया है।

असैनी पञ्चेंद्रिय तकके मन नहीं होता है, अतएव वे सब तो अज्ञान मिथ्यात्वसे पीड़ित हैं। उनका कर्मोदयसे ऐसा स्वभाव सा होगया है जिससे वे इंद्रियोंके विषयोंमें ही सुख मानते हैं। वे कभी सम्यक्तको नहीं पासक्ते हैं। जो सैनी पञ्चेन्द्रिय हैं उनके विचार करनेकी शक्ति है। उनको सत्गुरुका व सत्य जिन आगमका निमित्त नहीं मिलता है, तब वे भी अज्ञानमें लीन रहते हुए पांचों इंद्रियोंके विषयसुखको ही सुख जानते हैं। इस तरह वे भी संसारासक्त होकर पांच पापोंमें लीन रहते हैं, दुर्गतिके पात्र होते हैं। अज्ञान महान दुःख व भयका मूल है। जिनको इंद्रिय सुखमें सुखकी बुद्धि है यह अज्ञान है। अतीन्द्रिय सुख ही सुख है। इंद्रिय सुख सुखाभास है, दुःखका कारण है, ऐसा श्रद्धान जिनको नहीं है वे दर्शन मोहसे अन्ध होकर विषयोंके भीतर वारवार जाते हैं, कष्ट पाते हैं, भवभवमें जन्म मरणके दुःख सहते हैं। अज्ञानीका ज्ञान विपरीत होता है। समयसार कलशमें कहा है—

अज्ञानान्मृगतृष्णिका जलधिया धावन्ति पातुं मृगा अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिवच्छुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुला ॥ १३–३ ॥

भावार्थ—यह अज्ञानका ही दोष है जिससे मृग जंगलमें प्यासे हो मृगतृष्णाको या चमकती हुई वालूको जल मानके पीनेको दौडते हैं। यह अज्ञानका ही दोष है जिससे जन अन्धकारमें रस्सीको सर्प जानकर भयसे भागते हैं। अज्ञानके ही कारण अज्ञानी रात दिन अपनेको राग द्वेषमई माना करते हैं, नाना विकल्प करते हैं। जैसे समुद्र पवनके योगसे क्षोभित होता है वैसे आकुलित होते हैं। आप शुद्ध ज्ञानमई है तौभी इस क्रोधादि भावोंका कर्ता है ऐसा मान लेते हैं। सारसमुचयमें भी कहा है—

कषायविषयैश्चित्तं मिथ्यात्वेन च संयुतम्। संसारबीजतां याति विमुक्तं मोक्षबीजताम् ॥ ३३ ॥

भावार्थ—जिसका मन मिथ्यादर्शनसे मैला होकर विषयों व कषायोंके आधीन है वह संसारके भ्रमणका पात्र है, परंतु जिसके भीतरसे मिथ्यात्व निकल गया है वह विषय कषायोंके आधीन नहीं होकर मोक्षका पात्र होता है—

(२४) कर्मादि, असमाधि, अस्थिति–ये तीन भाव।

कर्मादि कर्म कर्तव्यं, असमाधि मिथ्या संजुतं।
अस्थिति असुद्ध परिणामं, त्रिभङ्गी संसार कारनं ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्या सजुत) मिथ्यादर्शनके साथ (कर्मादि कर्म कर्तव्यं) मन वचन कायके द्वारा कार्य करते रहना तथा (असमाधि) आत्मध्यानका लाभ न पाना (असुद्ध परिणाम) अशुद्ध परिणाम रखना अर्थात् शुद्ध भावमें स्थिरता न पाना (त्रिभङ्गी ससार कारन) ये तीनों ही भाव संसारके भ्रमणके कारण हैं।

भावार्थ—मोक्षमार्ग स्वानुभव स्वरूप है। जहां मन, वचन, काय तीनोंका कार्य बन्द है, शरीर स्थिर होता है, वाणीका प्रचार नहीं रहता है, मनका काम विचार करनेका है, विचार भी बन्द होते हैं। जब आत्मा आत्मासे ही आत्मामें स्थिर होता है, ऐसा जो समाधि भाव उसको स्वानुभव कहते हैं। वहां रत्नत्रयकी एकता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र तीनों स्वाभावोंकी एकता होरही है। अपने शुद्धात्म स्वभावका श्रद्धान भी है, ज्ञान भी है व स्वरूपमें स्थिरता रूप चारित्र भी है। इसी स्वानुभवसे नवीन कर्मोंका संवर होता है और पुरातन कर्म विशेष झड़ते हैं। सम्यग्दर्शन गुणके प्रगट हुए विना स्वानुभव करनेकी योग्यता नहीं प्राप्त होसकती है।

मिथ्यादृष्टीको आत्माकी स्थिरता प्राप्त नहीं होसक्ती। शुद्ध भावका उसको पता ही नहीं है। कदाचित यह ध्यान भी करता है तो आत्माका ही करता है, साधारण रूपसे मिथ्यादृष्टियोंके भीतर सदा चञ्चलता रहती है। वे मनसे कुछ विचारते हैं, मनसे कहते हैं, कायसे क्रिया करते हैं। विषयभोगकी व मान कषायकी वासना मिथ्यात्वीमें होती है इसी हेतुको ध्यानमें लेकर वह विषयभोगोंके संग्रह रक्षणके

लिये मन, वचन, कायसे वर्तन किया करता है, अशुभ वर्तन विशेष होता है। हिंसा, असत्य, स्तेय, कुशील, परिग्रहके भीतर स्वच्छन्द हो वर्तता है। कोई भद्र मिथ्यादृष्टी होते हैं वे न्यायरूप विषयभोगोंके लिये मन, वचन कायका कर्तव्य पालते हैं। कोई कोई आगामी परलोकमें संसारका सुख मिले इसलिये धर्मके भी शुभ काम करते हैं। पूजा पाठ, जप, तप, परोपकार दानादि भी करते हैं। जब मन्द कषाय होती है तब पुण्य, जब तीव्र कषाय होती है तब पापकर्म बांध लेते हैं। कभी नर्क, कभी तिर्यंच, कभी मनुष्य, कभी देव होते हैं। नौग्रैवेयिक तक चले जाते हैं। देवगतिसे आकर १२ स्वर्ग तकके तिर्यंच तक होजाते हैं। सम्यक्तके विना वे चारों गतियोंकी नाना अवस्थाओंमें चक्कर लगाते हुए जन्म मरण किया करते हैं। शारीरिक, मानसिक कष्ट सहन करते हैं। उनको आत्मज्ञान न होनेसे समाधिकी प्राप्ति नहीं होती है। सत्य समाधिके विना ध्यानकी ऐसी अग्नि नहीं जल सक्ती है जिससे बन्ध न हो व निर्जरा हो। मिथ्यादृष्टीका मन भीतर आर्तध्यानमें लगा रहता है। अधिकतर विषयभोगकी तृष्णामें रहता हुआ निदान व परिग्रहनन्दी ध्यान रहता है। उनके भीतर सदा ही अस्थिर भाव रहता है, शुभ राग या अशुभ रागसे चञ्चल परिणाम रहता है। आत्मामें स्थिरतारूप शुद्धोपयोगका कभी भी लाभ नहीं होता है। ज्ञानचेतनाको वे कभी नहीं पासक्ते जिससे ज्ञानोपयोग शुद्धात्माके ज्ञानका ही स्वाद ले, रागद्वेषका स्वाद न ले। मिथ्यातीके भीतर सदा कर्मचेतना या कर्मफलचेतना रहती है। यातो रागद्वेषपूर्वक कर्म किया करते हैं या वैषयिक सुख या दुःखका अनुभव किया करते हैं। जिनको अपने आत्माके स्वभावका ज्ञान व श्रद्धान नहीं होगा वह कैसे आत्मामें रमण कर सक्ता है ?

यहां दिखलाया है कि जहांतक मन, वचन, कायकी बुद्धिपूर्वक शुभ या अशुभ क्रिया होती रहती है व उस क्रियाके भीतर आसक्त भाव है, रुचिपूर्वक क्रिया है वहांतक संसारका प्रवाह चलता ही रहता है। सम्यग्दृष्टी निरासक्तिसे प्रयोजनवश मन, वचन, कायकी क्रिया करता है तथा उस वर्तनको भी त्यागने योग्य समझता है, मोहनीयकर्मकी प्रेरणासे करता है। निरन्तर मोहके क्षयका उत्सुक है इसलिये सम्यक्त-वर्द्धक कर्तव्य मोक्षमार्गमें बाधक नहीं है। उसको बन्ध बहुत अल्प होता है व पूर्व कर्म विशेष गिरते हैं। मिथ्यादृष्टीको कभी भी स्वात्मानन्दका लाभ नहीं होपाता है। अतएव मिथ्यात्व विषका वमन जैसे हो वैसे करना चाहिये। सारसमुचयमें कहा है—

अनादिकालजीवेन प्राप्तं दुःखं पुनः पुनः मिथ्यामोहपरीतेन कषायवशवर्तिना ॥ ४८ ॥

भावार्थ—अनादिकालसे मिथ्यादर्शनके संयोगसे कषायोंके वश होकर इस जीवने वारवार कष्ट उठाए हैं।

सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य ध्रुवं निर्वाणसंगमः । मिथ्यादृशोऽस्य जीवस्य संसारे भ्रमणं सदा ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन सहित है उसको उपशम निर्वाणका लाभ होगा। मिथ्यादृष्टी जीवका सदा इस संसारमें भ्रमण रहेगा।

(२५) हास्य, रति, अरति—ये तीन भाव।

हास्य राग वर्द्धता, अरति मिथ्यात्व भावना।
आर्त्तरौद्र संयुतं, त्रिभंगी दल पस्यते ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात्व भावना) मिथ्यादर्शनकी भावना सहित (आर्त्तरौद्र संयुत) आर्त्तध्यान व रौद्रध्यानको रखते हुए (हास्य राग वर्द्धता अरति) हास्यभाव होना, रागकी वृद्धिसे रतिभाव होना, अरति होना (त्रिभंगी दल पस्यते) इस तरह ये तीन भाव देखे जाते हैं जो आस्रवके कारण हैं।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी संसारासक्त है, मोक्षमार्गसे विपरीत भावका धारी है, इष्ट पदार्थोंके वियोगमें दुःखित होता है, अनिष्टके संयोगमें पीड़ित होता है। रोगादि होनेपर संक्लेश परिणामी होता है, आगामी भोगोंके लिये आतुर होकर घवड़ाता है। इस तरह चार प्रकार आर्तध्यान करता रहता है। स्वार्थसाधनके लिये बाधक कारणोंको हटानेके लिये हिंसा करता है, कर रहा है व हिंसामें प्रसन्न होता है, यह हिंसानन्दी रौद्रध्यान है। इसी हेतुसे झूठ बोलता है बुलवाता है, व झूठ व्यवहारको जानकर प्रसन्न होता है वह मृषानन्दी रौद्रध्यान है। चोरी करके, कराके, व चोरी हुई जानकर प्रसन्न होता है। यह चौर्यानन्दी रौद्रध्यान है। परिग्रह बढ़ने बढ़ाने व परिग्रहकी अनुमोदना करते हुए प्रसन्न होता है यह परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान है। इन चार प्रकार रौद्रध्यानोंमें भी लगा रहता है। जब किसी तरह स्वार्थ सध जाता है तब हास्यभाव—

प्रसन्नता बताता है या किसी मूर्खको काम करनेमें असमर्थ देखता है तो हास्यभाव बताता है, परकी निन्दा व अपनी प्रशंसा करके हास्यभाव करता है। भण्ड वचन बोलकर व असत्य चर्या करके हास्य कौतूहल करता है। कभी घृणाभावसे दूसरेकी हँसी उड़ाता है। जहां विषयसुख साधन-कर व दूसरोंकी घृणा करके अपनेको चतुर दूसरेको मूर्ख देखके, परिणामोंमें प्रसन्नता आकर हास्य होजाना सो हास्य भाव है। उस समय हास्य नोकषायके उदयसे हास्य झलक जाती है। हंसी मन्द या जोरसे होजाती है, मुशकराहट होती है या जोरसे खिलखिलाकर हंसता है। सो सब हास्यभाव है। इसके भी दो भेद हो सक्ते हैं– शुभ व अशुभ। शुभ कर्मोंको होते देखकर हास्यभाव होजाना व शुभ कार्योंकी अपेक्षा मनकी प्रसन्नता सहित हास्यभाव आजाना। जहां मिथ्यात्वके साथ आर्तरौद्रध्यानके संपर्कमें हास्यका झलकाव है। वह हास्यभाव संसारका कारण है। रौद्रध्यानीके हास्यभाव विशेष होता है। भोगाकांक्षामें भी भोग मिलनेपर प्रसन्नता सहित हास्यभाव होता है।

इंद्रियोंके विषयोंमें उत्सुकताको रतिभाव कहते हैं। मनोज्ञ विषयोंके न मिलनेपर अमनोज्ञसे उदासीनता होना अरति भाव है। मिथ्यादृष्टीका रतिभाव स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन, धान्य, वस्त्रालंकार, मकानादि, भोजन, गाना, बजाना, सुगन्धादि पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें बहुत अनुराग पूर्ण होता है। रतिके साथ ही साताकारी पदार्थोंके होनेपर सुखकी वेदना होती है। मैं सुखी भया यह भाव होता है, रति न होनेसे साताकारी पदार्थोंके संयोग होनेपर भी सुख वेदना नहीं होती है। मिथ्यादृष्टी विषयोंसे गाढ़ प्रीति करता है। जब अनिष्ट विषय पापके उदयसे मिलते हैं, तब आसाताके उदयके साथ अरतिका उदय होता है, तब मैं दुःखी हुआ ऐसा अनुभव करता है। मिथ्यादृष्टीके कभी सुख, कभी दुःख, कभी हास्यभाव रहता ही है। वह निरन्तर हास्य, रति व अरतिमें उलझा रहता है। पाप कार्योंमें रति बनी रहती है। स्वकार्य होनेसे व परका नाश होनेसे प्रसन्नता रखकर हास्यभाव करता है। धर्म कार्योंको व धर्मात्माओंको व धर्मायतनोंको नहीं चाहता है। उनसे अरति रहती है। इष्ट पदार्थसे विरुद्ध पदार्थ मिलनेपर दृढ़ अरति पैदा होती है। इस तरह रागद्वेष मोहमें फँसा हुआ अज्ञानी मिथ्यादृष्टी संसारमें भ्रमण करनेवाले कर्म बांध लेता है, बहुधा नर्क, तिर्यंच आयु, इन तीन प्रकारके भावोंसे बांध लेता है। सच्चे देव गुरु शास्त्रकी हँसी उड़ाना नर्कायुके बन्धका कारण है। तब ही मिथ्यात्व कर्मका बन्ध होता है। सम्यक्ती कर्मका उदय

विचार कर व वस्तुके स्वरूपको पहचानकर समभाव रखता है। लौकिक कार्योंके होनेपर पुण्यका उदय, न होनेपर पापका उदय विचारता है, किसीकी हँसी नहीं करता है। सम्यक्ती यदि सरागी है, तो हास्य, रति व अरतिके होनेपर उन भावोंके जीतनेका उद्यम करता है। यहां मिथ्यात्व सहित ये तीनों भाव बहुत बड़े हानिकारक हैं, तीव्र बन्धके कारक हैं, अतएव त्यागने योग्य हैं।

बृहत् सामायिक पाठमें अमितगति आचार्य कहते हैं—

भवति भविनः सौख्यं दुःखं पुराकृतकर्मणः। स्फुरति हृदये रागो द्वेषः कदाचन मे कथं।

मनसि समता विज्ञायेत्थं तयोर्विदधाति यः। क्षपयति सुधीः पूर्वं पापं चिनोति न नूतनं ॥ १०२ ॥

भावार्थ—ज्ञानीका यह विचार रहता है कि जीवको सुख तथा दुःख अपने ही पूर्वमें किये हुए शुभ अशुभ कर्मसे होता है। इसलिये मैं सुखके होनेपर राग व दुःखके होनेपर द्वेष क्यों करूं? इस तरह जो कोई सुखदुःखका स्वरूप विचारकर समभाव रखता है वह बुद्धिमान पूर्व कर्मोंकी निर्जरा करता है व नवीन कर्मोंको नहीं बांधता है। हास्य रति अरति भाव रागद्वेषके प्रबल कारण हैं।

प्रवचनसारमें श्री कुंदकुंदाचार्य कहते हैं—

रत्तो बन्धदि कम्मं मुचदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा। एसो बन्धसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥ ८७-२ ॥

भावार्थ—वास्तवमें बन्धका संक्षेप स्वरूप जीवोंके लिये यही है कि रागी जीव कर्मोंको बांधता है और रागरहित जीव कर्मोंसे छूट जाता है।

(२६) स्त्री, पुरुष, नपुंसक—ये तीन भाव।

स्त्रिया काम वर्धन्ते, पुंसं मिथ्यात संजुतं।
नपुंसक मतिपंडस्य, त्रिभंगी दल तिष्ठते ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात संजुत) मिथ्यात्वके साथ मिथ्यादृष्टी जीवमें (स्त्रिया काम वर्धन्ते) स्त्री सम्बन्धी भावोंके होनेपर कामभावकी वृद्धि होती है (पुंसं) इसी तरह पुंवेदके उदयसे कामभावकी तीव्रता होती

है (षंडस्य नपुंसक मति) नपुंसक वेदके उदयसे नपुंसक सम्बन्धी भाव उभयरूप होता है (त्रिभंगी दल तिष्ठते) ये तीन कामभाव आस्रवके कारण हैं।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी कामभावोंमें भी फंसा रहता है। कभी स्त्री सम्बन्धी भाव होकर पुरुषसे भोगकी चाह पैदा करता है। कभी पुरुष सम्बन्धी भाव करके स्त्रीके साथ भोग करना चाहता है। कभी नपुंसक सम्बन्धी भावोंसे स्त्री व पुरुष दोनोंसे कामचेष्टा करना चाहता है। ये कामभाव महान अनर्थकारी हैं। कामके वश होकर तीव्र मिथ्यादृष्टी अपनी व परस्त्रीका विचार छोड़ बैठते हैं। कामभावके मोहमें वेश्यागमन करते हैं, परस्त्रीगमन करते हैं, काम कथा करते हैं, कामभाव बढ़ानेवाले नाटक देखते हैं, कामभाववर्द्धक चित्र देखते हैं, शृंगाररसके शास्त्र पढ़ते हैं। इन पांच खोटी भावनाओंमें वर्तते रहते हैं—(१) काममें राग पढ़ानेवाली कथाएं पढ़ना व सुनना, (२) कामके वश हो, मनोहर रूपोंके देखनेके लिये आतुर रहना व देखते फिरना, (३) कामभोगोंकी चर्चा करना, (४) पौष्टिक कामोद्दीपक रसोंको खाना, (५) शरीरको शृंगारसे सजाकर मनोहर रखना। कामविकारसे पीडित होकर यह प्राणी महान कर्म बांध लेता है, तीव्र रागद्वेषमें फंस जाता है। मनोज्ञ स्त्री पुरुषके मिलनेके लिये लालायित रहता है। मिलनेके लिये नाना प्रकार मायाजाल रचता है, जो कामभोगोंमें बाधक होते हैं, उनके साथ वैर बांध लेता है। कामभोगके कारण स्त्रीके मोहमें बड़े बड़े युद्ध छिड़ जाते हैं।

कामी जीव अति तृष्णावश अधिक भोग करके निर्बल व रोगी होजाता है। फिर महान कष्ट उठाता है। कामभाव समभावका नाश करनेवाला है, वीतराग भावसे दूर रखनेवाला है, शुद्ध भावका तीव्र विरोधक है। मिथ्यादृष्टी स्पर्शन इन्द्रियका तीव्र लोलुपी होता हुआ महान अनर्थ करता है। कमठके जीवने छोटे भाई मरुभूतकी स्त्रीके साथ कामचेष्टा करके भव भवमें दुर्गति पाई व मरुभूतके जीव श्री पार्श्वनाथसे वैर बताया। रावण काम भावके कारण राज्यभ्रष्ट हो नर्क गया। काम भावकी तीव्रतासे बचनेके लिये मानवको विवाह करके रहना चाहिये व परस्त्री और वेश्यासे बचना चाहिये। स्वस्त्रीमें भी अधिक तीव्रता न रखनी चाहिये। ब्रह्मचर्य मोक्षमार्गमें परम सहायक है। अतः मोक्षमार्गी बुद्धिमानको मन, वचन, कायसे पूर्ण शीलव्रतको पालना चाहिये। असमर्थ हो तो गृहस्थमें रहकर स्वस्त्री सन्तोष व्रत रखना चाहिये। काम भावसे बचनेके लिये वृद्ध व साधुसेवा, समयका सदुपयोग, सत्संगति, शास्त्र-

स्वाध्याय, सामायिक, एकांत सेवन करना चाहिये। कामभाव उत्पादक निमित्तोंसे बचना चाहिये। जैसे घी आगका निमित्त पाकर पिगल जाता है, वैसे कामीका मन कामवर्द्धक स्त्री व पुरुषके निमित्तसे कामी होजाता है। सारसमुच्चयमें कहा है—

मदनोऽस्ति महाव्याधिर्दुश्चिकित्स्यः सदा बुधैः। संसारवर्धनेऽत्यर्थं दुःखोत्पादनतत्परः ॥ ९३ ॥
यावदस्य हि कामाग्नि हृदये प्रज्वलत्यलम्। आश्रवन्ति हि कर्माणि तावदस्य निरन्तरम् ॥ ९४ ॥
अहो ते धिषणाहीना ये स्मरस्य वशं गताः। कृत्वा कल्मषमात्मानं पातयन्ति भवार्णवे ॥ ९९ ॥

भावार्थ—कामभाव एक वड़ा रोग है। वड़े २ बुद्धिमानोंसे भी इलाज नहीं बन पड़ता है। इससे संसारकी वृद्धि होती है, सदा ही दुःख मिलता है। जबतक इस जीवके मनमें कामकी आग जलती रहती है, तबतक इसके निरन्तर कर्मोंका आस्रव हुआ करता है। जो मानव कामके वश होजाते हैं, वे बुद्धिहीन हैं, वे आत्माको मलीन करके उसे संसार-समुद्रमें डुबा देते हैं। अतएव तीनों प्रकारके कामभावोंको आस्रवकारक जानकर रोकना चाहिये।

(२७) मनुष्यनी, तिर्यञ्चनी, देवांगना–ये तीन भाव।

मनुष्यनी व्रत हीनस्य, तियञ्चनी असुह भावना।
देवांगना मिच्छदृष्टी च, त्रिभङ्गी पतितं दलं ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—(व्रत हीनस्य) जिसको ब्रह्मचर्यका कोई एक देश व सर्व देश व्रत नहीं है (मनुष्यनी) वह स्त्रीके सम्बन्धमें कामविकार करता है (असुह भावना तियञ्चनी) कामभावकी अशुभ भावनासे कभी किसी पशुओंको देखकर कामविकार कर लेता है या पशुओंकी काम-क्रीड़ा देखकर आनन्द मानता है, (मिच्छदृष्टी देवागना च) मिथ्यादृष्टी विषय सुखका रागी पुण्यके फलसे देवांगनाका भोग चाहा करता है (त्रिभंगी पतितं दल) ये तीनों प्रकारकी चेतन स्त्रियां दुर्गतिमें लेजानेकी पात्र हैं।

भावार्थ—कामविकारकी कारण तीन प्रकार चेतन स्त्रियोंको यहां बताया है। इनके भीतर रागभाव करनेसे कर्मोंका आस्रव होता है। रागी मिथ्यादृष्टी निरन्तर जगतकी महिलाओंके रूपको देखा करता है,

देखकर कामविकार उत्पन्न करता है। मोहित होकर उनके साथ हास्य कौतूहल वार्तालाप करता है, किसी तरह उनको वशमें करके उनसे काम रति करता है। व्रतहीन बिलकुल निरर्गल होता है। जिस किसीको व्रत होगा वह सर्व स्त्री मात्रको माता, भगिनी, पुत्रीके समान देखेगा। एक देशव्रती स्वस्त्रीके सिवाय शेषमें विकार रहित बुद्धि रखेगा। अव्रती मिथ्यात्वीको विवेक नहीं होगा, वह कामभावमें फँसकर स्वस्त्री, परस्त्री, वेश्या, कन्या आदिका भेद न करके चाहे किसीके साथ राग बढ़ा लेगा। इसलिये ज्ञानीको स्त्री मात्रसे शीलभाव रखना चाहिये या स्वस्त्रीमें सन्तोष रखना चाहिये।

तिर्यंचनीके शरीरोंको देखकर भी कामीके मनमें कामविकार पैदा होजाता है। कोई निन्दित मानव कभी कामचेष्टा भी कर लेता है। पशुओंका जोड़ा मिलाकर उनकी रति देखकर अनुमोदना करता है। इससे भी कर्मास्रव होता है। इसी तरह मिथ्यात्वी कामभोगका आतुर स्वर्गादिमें देवियोंका रूप, लावण्य, हावभाव, विलास विक्रिया सुनकर यह लालसा मनमें बांध लेता है कि मैं देव पैदा हूं और मनोहर रूपवान देवियोंके साथ क्रीडा करूं। या देवदेवियोंके रागभावकी कथा सुनकर उनमें अनुमोदना कर लेता है। इस तरह तीन प्रकार चेतन स्त्रियोंके निमित्तसे मनमें विकारका होना, वचनोंसे हास्यादि करना, शरीरसे कुचेष्टा करना पापबन्धका कारण है। जो आस्रवसे बचना चाहें उनको कामविकारको मिटाकर सरल शुद्ध दृष्टिसे स्त्री, तिर्यंचनी व देवांगनाको देखना चाहिये। तथा इनके निमित्तोंको बचाना चाहिये। एकांतमें स्वमाता, बहन, पुत्रीसे भी सम्बन्ध न रखना चाहिये।

भगवती आराधनामें शिवकोटि आचार्य कहते हैं—

णासो अत्थस्स खओ देहस्स व दुग्गदीए मग्गो य। आवाहो य अणत्थस्स होइ पहवो दोसाणं ॥ ९८३ ॥

भावार्थ—स्त्री धन नाशका कारण है, शरीरको क्षीण करनेवाली है, दुर्गतिका मार्ग है, अनर्थोंका निवास है और दोषोंको उत्पन्न करनेवाली है।

महिला विग्घो धम्मस्स होदि परिहो य मोक्ख मग्गस्स। दुक्खाणय उप्पत्ती महिला सुक्खाण य विवत्ती ॥ ९८४ ॥

भावार्थ—स्त्री धर्मको विघ्न करनेवाली है, मोक्षमार्गमें चलनेसे रोकनेवाली है, दुःखोंका कारण है व सुखोंको नाश करनेवाली है।

पासो व बद्धिदुं जे छित्तुं महिला असी व पुरिसस्स। सेलं व विंधिदुं जे पंको व णिमज्जिदुं महिला ॥ ९८५ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुषको बांधनेके लिये पाशी है, छेदनेके लिये खड्गके समान है, बींधनेके लिये बाणके समान है, यह संसारमें डुबानेके लिये कीचड़के समान है।

(२८) काष्ठ, पाषाण, लेप–ये तीन भाव।

काष्ठ पाषाण दिष्टं च, लेपं दिष्टि अनुरागतः।
पाप कर्म च वर्धन्ति, त्रिभंगी असुहं दलं ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(अनुरागतः) रागभावसे (काष्ट पाषाण दिष्टं च) काठकी व पाषाणकी मूर्ति देखना (लेपं दिष्टि) व चित्रोंको देखना (पाप कर्म च वर्धति) पाप कर्मके बन्धका कारण है (त्रिभंगी असुह दलं) ये तीन अशुभ भावोंके कारण हैं।

भावार्थ—गाथा ३७में चेतन स्त्रियोंके तीन भेद बताये हैं। यहां अचेतन स्त्रीके तीन भेद बताये हैं। काष्टकी स्त्री, पाषाणकी स्त्री, चित्रकी स्त्री, स्त्रियोंके शृङ्गारित आकार बने हुये रागी पुरुषोंके मनमें राग भावसे देखे जानेपर रागभावके अधिक पैदा करनेमें निमित्त कारण हैं। जैसे चेतन स्त्रीके बाहरी अंग दिखते हैं जो कि शरीराश्रित जड़ है और उनको देखकर भावोंमें विकार होजाता है वैसे जड़ पुद्गलके बने काठ, पाषाण, व लेपके आकारोंको देखनेसे विकार होसकता है। इसलिये ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये ऐसी रागभाव उत्पन्न करानेमें कारणभूत किसी भी काठ व पाषाणकी मूर्तिको व चित्रको नहीं देखना चाहिये न उनका निमित्त मिलाना चाहिये। अपने बैठने व शयनके स्थानमें ऐसी कोई रागवर्द्धक स्त्री आदिकी मूर्ति व चित्र नहीं रखना चाहिये, न ऐसे खेल तमाशे देखना चाहिये जिनमें चित्रोंके द्वारा काम भावोंका प्रदर्शन दिखाया जाता हो। परिणाम निमित्ताधीन है। जबतक ऊँची वीतराग दशा प्राप्त न हो जबतक आहार विहार निद्राका आक्रमण है, जो छट्टे प्रमत्तविरत गुणस्थान तक सम्भव है तबतक रागवर्द्धक मूर्ति व चित्रोंके निमित्तोंको बचाना चाहिये। अशुभ भाव उत्पादक चित्रोंसे व मूर्तियोंसे भावोंमें कामभाव विकार होजाना सम्भव है तब पाप कर्मका बन्ध होजायगा। अतएव आस्रवसे बचनेके लिये रागवर्द्धक मूर्ति व चित्रोंका अवलोकन तजना चाहिये। साधु अवस्थामें गृह त्यागकर वनमें व

एकांतमें निवास इसीलिये किया जाता है कि वहां राग द्वेषवर्द्धक निमित्त नहीं है। बाहरी परिग्रह अंतरंगमें मूर्छा उत्पन्न करनेमें कारणभूत हैं। इसलिये परिग्रहका त्याग भावोंमें निर्ममत्वकी उत्पत्तिका उपाय है, पाप भाव पैदा करते हैं, बाहरी पदार्थ निमित्त होजाते हैं। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञायें बाहरी निमित्तोंके होनेपर पैदा होजाती हैं। जैसे सुन्दर भोजनको देखकर आहारका भाव, भयप्रद सिंहादि चित्रोंके देखनेपर भयका भाव, कामभाव उत्पादक काष्ठ पाषाण व चित्रके स्त्री पुरुषोंके रूप देखनेसे मैथुनभाव, सुन्दर वस्त्रालंकार मकानादि देखनेसे परिग्रहमें मूर्छाभाव उत्पन्न होजाता है। इसीलिये गोम्मटसारमें कर्मोंके उदयमें नोकर्म बाहरी कारण बताये हैं।

पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें कहा है—

हरिततृणाङ्कुरचारिणि मन्दा मृगशावके भवति मूर्च्छा। उन्दरनिकरोन्माथिनि मार्जारे सैव जायते तीव्रा ॥ १२१ ॥

निर्बाधं ससिद्ध्येत्कार्यविशेषो हि कारणविशेषात्। औधस्यखण्डयोरिह माधुर्यप्रीतिभेद इव ॥ १२२ ॥

माधुर्यप्रीतिः किल दुग्धे मन्दैव मन्दमाधुर्ये। सैवोत्कटमाधुर्ये खण्डे व्यपदिश्यते तीव्रा ॥ १२३ ॥

भावार्थ—हरी घास खानेवाले मृगके बच्चोंमें मूर्छा कम होती है जबकि मूषक समूहको नाश करनेवाले बिलावमें मूर्छा तीव्र होती है। बाहरी कारणविशेषसे भीतरी परिणामोंमें कार्य होनेकी विशेषता बाधा रहित सिद्ध है। जैसे दूध व खांडमें मीठापन कम व अधिक होनेसे प्रीति भी कम व अधिक होती है। दूधमें कम मीठापन है, इससे मीठेपनेकी अपेक्षा दूधमें प्रीति कम होती है। खांडमें मीठापन अधिक है इससे खांडमें अधिक प्रीति होती है। अतएव भावोंमें रागभावकी उत्पत्तिके कारण बाहरी पदार्थोंका संयोग निमित्त होता है, ऐसा जानकर उनका निमित्त बचाना चाहिये।

(२९) रूप, अरूप, लावन्य–ये तीन भाव।

रूपं अरूपं लावन्यं, दिष्टितं असुह भावना।
ते नरा दुक्ख साहंति, त्रिभङ्गी दल मोहितं ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(रूपं अरूपं लावन्यं दिष्टितं असुह भावना) स्वरूप, कुरूप तथा सुन्दरताको देखनेसे अशुभ

भावना पैदा होजाती है (ते नरा दुक्ख सहति) जो मानव ऐसे स्वरूप, कुरूप व लावन्यके देखनेमें उपयोग जोड़ते हैं वे राग द्वेष मोहको पैदा करके पाप बांध उसका फल दुःख पाते हैं (त्रिभंगी दल मोहितं) मोहके पैदा करनेके ये तीन भाव हैं।

भावार्थ—जगमें नानाप्रकारके पदार्थ हैं—चेतन व अचेतन हैं। पांचों इंद्रियोंके द्वारा स्पर्शने योग्य, स्वादने योग्य, सूंघने योग्य, देखने योग्य, सुनने योग्य, नानाप्रकारके पदार्थोंको इन्द्रियोंसे ग्रहणकर मिथ्या-दृष्टी जीव समभाव नहीं रखते। मनोज्ञ व इष्ट विषयोंमें राग व अनिष्ट व अमनोज्ञ विषयोंमें द्वेषभाव उत्पन्न कर लेते हैं। मोहित करनेवाली स्त्रियोंकी व पुरुषोंकी सुन्दरताको देखकर मोहित होजाते हैं। मिथ्यादृष्टी अज्ञानीके भीतर अशुभ भावनाओंके उत्पन्न करनेमें इंद्रियोंके द्वारा पदार्थोंका ग्रहण निमित्त कारण है। अच्छे गद्दे, तकिये, शय्या, वस्त्रको देखकर व स्पर्शकर उनको प्राप्त करके स्पर्श करनेके भाव होजाते हैं, नानाप्रकार स्वादिष्ट भोजन सामग्रीको स्वादमें लेनेसे उनके भीतर तृष्णा पैदा होजाती है। पुनः पुनः ऐसे मिष्ट भोग प्राप्त करना चाहता है—उधम करता है। न्यायसे द्रव्य न मिले तो अन्यायसे द्रव्य लाता है जिह्वा इंद्रियको तृप्त करता है। सुन्दर तेल अतर व पुष्पोंको सूंघकर उनके भीतर रागभाव बढ़ जाता है, पुन पुनः उससे भी अधिक सुगंधित द्रव्योंकी कामना करता है, उद्यम करता है, जिस तरहसे हो मिलाता है। सुन्दर नगर, उपवन, महल, आभूषण, स्त्री, पुरुष, चित्रादि, नाटकादि देखकर राग भाव पैदा कर लेता है। वार वार सुन्दर रूपोंको देखनेकी चेष्टा करता है। न्याय व अन्यायसे पैसा लाकर सुन्दर पदार्थोंको देखनेको जाता है। देश परदेश भ्रमण करता है। सुन्दर रागरागिणी सुनकर गाना सुननेका राग बढ़ जाता है। वारवार उससे भी सुरीले गान सुनना चाहता है। जिस तरहसे हो वैसे निमित्त मिलाता है। इसी तरह यदि कंकड़ पत्थरका व कांटोंका स्पर्श होता है तो द्वेषभाव होजाता है। खारा, कटुक, अस्वादिष्ट, जला, अधपका भोजन मिलता है तो द्वेषभाव कर लेता है। सुगन्धके सूंघनेपर, कुरूपोंके देखनेपर, गधे आदिके दुस्वरोंके सुननेपर द्वेषभाव पैदा होजाता है। वारवार ऐसे भावोंके कारणोंसे बचनेकी चेष्टा करता है। यदि अशुभ भोजनादि मिलते ही जाते हैं तो बड़ा आर्तध्यान करता है व स्त्री आदिपर क्रोधित होजाता है। लावण्यपूर्ण रूप देखकर मोही जीव उन्मत्त होकर अनेक कुचेष्टा करता है। किसी स्त्रीकी सुन्दरता पर मोहित होकर उसकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके मायाचार

करता है, अप्राप्ति होनेपर शोक करता है, कभी कभी अपघात कर लेता है। इसतरह मिथ्यादृष्टी जीव इंद्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण कर रागद्वेष मोहमें फँसकर अशुभ भावनाओंसे तीव्र पाप बन्ध करके संसारमें दुःख उठाता है। इसीलिये बंधके कारणोंमें इंद्रियोंको मुख्य कहा गया है।

सार-समुच्चयमें कहा है—

अक्षाण्येव स्वकीयानि शत्रवो दु:खहेतवः। विषयेषु प्रवृत्तानि कषायवशवर्तिनः ॥ ७९ ॥

इन्द्रियाणा यदा छन्दे वर्तते मोहसंगत। तदात्मैव तव शत्रुरात्मनो दु:खबन्धनः ॥ ८० ॥

इन्द्रियाणि वशे यस्य यस्य दुष्टं न मानसम्। आत्मा धर्मरतो यस्य सफल तस्य जीवितम् ॥ ८१ ॥

भावार्थ—कषायवान जीवकी अपनी इंद्रियें ही महान् शत्रु हैं, दुःखकी कारण हैं, क्योंकि अपने २ विषयोंमें जाकर रागद्वेष मोह पैदा करा देती हैं। जब यह मोही आत्मा इन्द्रियोंके वशमें प्रवृत्ति करता है तब यह आत्मा आप ही अपना शत्रु होजाता है, इस लोक परलोकमें दुःख सहता है। इसलिये जिसके वशमें इन्द्रियां हैं व जिसका मन कषायोंके कारण दोषी नहीं है व जो धर्ममें रत है, उसी आत्माका जीवन सफल है। मूलाचार समयसार अधिकारमें कहा है—

जिब्भोवत्थणिमित्तं जीवो दुक्खं अणादिसंसारे। पत्तो अणतसो तो जिब्भोवत्थे जयह दाणिं ॥ ९७ ॥

भावार्थ—जिह्वा व स्पर्श इन्द्रियोंके कारण इस जीवने इस अनादि संसारमें अनन्तवार दुःख पाया है। इसलिये अब तो रसना व स्पर्श इन्द्रियोंको विजय कर।

(३०) माया, मोह, प्रमाद–ये तीन भाव।

माया मोह ममत्तस्य, प्रमादं असुह चिंतनं।
ममत्त मिथ्या संजुत्तं, त्रिभङ्गी नरयं पतं ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थ—(माया मोह ममत्तस्य) संसारकी मायाके भीतर मोह ममता करनेमें (प्रमाद असुह चिंतनं) प्रमादभाव होता है तब अशुभ चिंताएँ होती हैं (मिथ्या सजुत्तं ममत्तं) यह तीन मिथ्यादर्शन सहित ममताभाव हैं (त्रिभङ्गी नरयं पत) संसारकी माया, मोह, प्रमाद ये तीन भाव नरकमें जानेके कारण हैं।

भावार्थ—संसारकी क्षणभंगुर स्वप्नसम अवस्थाओंको माया कहा गया है। मायाके भीतर यह मिथ्यादृष्टी जीव मोह कर लेता है, मोहसे प्रमाद भाव होता है तब धर्मसे व न्यायसे चलायमान होकर व कषायके वशीभूत होकर प्रवृत्ति होजाती है। मिथ्यादृष्टीको निश्चयनय या द्रव्य दृष्टिका पता नहीं है। वह यह नहीं जानता है कि यह लोक जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल इन छः द्रव्योंका समुदाय है। जितनी कुछ अवस्थाएं इंद्रियोंसे ग्रहणमें आती हैं वे सब बदलनेवाली अथिर अवस्थाएं होती हैं। उनकी दशा बिजलीके चमकारके समान व पानीके बुद्बुदके समान व इन्द्र धनुषके समान व शरदकालके मेघके समान व धूप छायाके समान चञ्चल है। अज्ञानी प्राणी इंद्रियोंके विषयोंका लोभी उन पदार्थोंको राग सहित जानता है, जो अपनेको मनोज्ञ भासते हैं उनमें राग कर लेता है, जो अमनोज्ञ भासते हैं उनमें द्वेष कर लेता है। रागसे पीड़ित हो उनका मोही होजाता है, मोही होकर उन पदार्थोंकी बारबार प्राप्तिका, रक्षाका यत्न करता है, धर्म व न्यायकी रक्षाका विचार मनसे हट जाता है। धर्मसे अनादरभाव ही प्रमाद है। प्रमादके वशीभूत होकर स्वच्छन्द हो हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, कुशील सेवन करता है, परिग्रह एकत्र करता है, पांचों पापोंमें फंस जाता है, रौद्र-ध्यानी होजाता है। इष्ट वस्तुके वियोगमें व अनिष्टके संयोगमें दुःखित मन होकर आर्तध्यान कर लेता है। जिससे नर्क आयु बांधकर नर्क चला जाता है, इंद्रियोंकि तीव्र लोभी जीव ही घोर पाप करते हैं, स्त्रीके पीछे बड़े२ युद्ध छेड़ लेते हैं, किन्हींको विष देकर मार डालते हैं। धनके पीछे अनेक प्रपंच रचकर दूसरोंको ठग लेते हैं। घोर दुःख जब इष्ट वियोगका होता है तब अपना घात कर लेते हैं।

संसारकी मायाके सम्बन्धमें सारसमुच्चयमें कहा है—

जीवितं विद्युता तुल्यं संयोगा स्वप्नसन्निभा. सन्ध्यारागसमः स्नेहः शरीर तृणबिन्दुवत् ॥ १९० ॥

भावार्थ—यह जीवन तो बिजलीके चमत्कारके समान क्षणभंगुर है, स्वप्नके समान कुटुम्बादिका संयोग है, सन्ध्याकी लालीके समान जगतके प्राणियोंके साथ स्नेह है। तृणपर पड़ी हुई बूँदके समान शरीर क्षणमें पतनशील है।

शक्रचापसमा भोगा· सम्पदो जलदोपमाः । यौवनं जलरेखेव सर्वमेतदशाश्वतम् ॥ १९१ ॥

भावार्थ—इन्द्रियोंके भोग इन्द्र धनुषके समान देखते २ नष्ट होजाते हैं। मेघोंके विघटनेके समान

लक्ष्मी विला जाती है। पानीमें खींची हुई रेखोंके समान युवानी मिट जाती है। सर्व ही जगतकी पर्यायें क्षणभंगुर हैं।

गृहाचारकवासेऽस्मिन् विषयामिषलोभिनः। सीदंति नरशार्दूला बद्धा बान्धवबन्धनैः॥ १८१॥

भावार्थ—इस गृहस्थके खोटे वासमें रहते हुए पांचों इंद्रियोंके विषयोंके मांसके लोभी सिंहके समान बड़े२ मानव भी बन्धुजनोंके व परिवारके स्नेहमें बन्धे हुए दुःख उठाते रहते हैं।

कथं नोद्विजसे मूढ! दुःखात् संसृतिसंभवात्। येन त्वं विषयासक्तो लोभेनास्मिन् वशीकृत॥ १८६॥

भावार्थ—हे मूर्ख प्राणी! संसारके महान् दुःखोंसे तुझे वैराग्य क्यों नहीं आता है जिनसे तू इस संसारमें विषयोंके भीतर आसक्त होकर लोभके वशमें पड़ा है। सर्व पापोंका कारण प्रमाद है। प्रमादका कारण संसारकी मायामें मोह है, ऐसा जान इन तीन आस्रव भावोंसे बचना योग्य है।

(३१) अनन्तानु, राग, मिश्र-ये तीन भाव।

अनन्तानु कषायं च, रागादि मिश्र भावना।
दुर्बुद्धि कर्म वर्धते, त्रिभङ्गी दुर्गति कारनं॥ ३९॥

अन्वयार्थ—(अनन्तानु कषाय च) अनन्तानुबन्धी कषाय (रागादि) रागद्वेषादि भाव (मिश्र भावना) अनन्तानुबन्धी कषाय सहित रागद्वेषकी भावना (दुर्बुद्धि कर्म वर्धते) इनसे मिथ्यादृष्टी मिथ्या बुद्धिधारी कर्मोंका बन्ध करते हैं (त्रिभंगी दुर्गति कारनं) तीनों ही प्रकारके भाव मोक्षसे विरुद्ध चारों गतियोंके कारण हैं।

भावार्थ—अनन्तानुबन्धी कषाय उसे कहते हैं जो सम्यग्दर्शन तथा स्वरूपाचरण चारित्रको रोके। जबतक उस कषायका उदय होता है तबतक सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं होता है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

तत्त्वार्थाश्रद्धाने निर्युक्तं प्रथममेव मिथ्यात्वम्। सम्यग्दर्शनचौराः प्रथमकषायाश्च चत्वारः॥ १२४॥

भावार्थ—तत्वार्थका श्रद्धान न होनेमें कारण मिथ्यात्वकर्म व सम्यग्दर्शनके लोपनेवाली प्रथम चार अनन्तानुबन्धी कषाय हैं।

अनन्तानुबन्धी कषायके होते हुए भी छहों लेश्याएँ सम्भव हैं। जब कषायोंका उदय होता है तब अनुभागके अनुसार फल दिखता है। कषायोंका अनुभाग पाषाण, हड्डी, काठ, वेल इन चार दृष्टांतोंसे तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर होता है। अनन्तानुबन्धी कषायमें भी ये भेद यथासम्भव होते हैं। एक बात और जान लेनी चाहिये कि जब अनंतानुबन्धीका उदय होता है तब साथ ही अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, व संज्वलनका भी उदय होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधके साथ तीन नीचेके क्रोधका भी उदय होता है, इसी तरह अप्रत्याख्यानके साथ प्रत्याख्यान व संज्वलनका उदय होता है। यही कारण है कि मिथ्यादृष्टी जीव अनन्तानुबन्धी कषायके उदयको भोगनेवाला कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल छहों लेश्याओंके भावोंको प्राप्त होसक्ता है अर्थात् उसके अशुभतम, शुभतर, अशुभ, शुभ, शुभतर, शुभतम, छहों प्रकारके तीन बुरे तीन अच्छे भाव होसक्ते हैं। यही कारण है जो ऐसी कषायको रखनेवाला द्रव्यलिंगी मुनि नौग्रैवेयिक तक जाकर शुक्ल लेश्याधारी अहमिंद्र होजाता है। चारों गतियोंमें मिथ्यादृष्टी श्रमण करता हुआ मनुष्योंमें राजा महाराजा, चक्रवर्ती, भोगभूमिका जीव; देवोंमें भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी; कल्पवासी १६ स्वर्गोंमें व कल्पातीत नौग्रैवियिक तक जन्मता है; नारकी पशु सब प्रकार तो हो ही सक्ता है। यहां कहनेका प्रयोजन यह है कि अनन्तानुबन्धी कषाय अनन्त संसारका कारण है। यह जीव नौग्रैवेयिक भी अनन्तवार हो चुका तौ भी संसारके जन्म मरणसे छूट नहीं सक्ता है।

दूसरे आस्रवकारी भाव रागादि हैं। यहां सामान्य राग, द्वेष, मोहको लिया गया है। चाहे अनन्तानुबन्धी सहित हों या रहित हों। अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंके उदयमें जो शुक्ललेश्याके होते हुए वैराग्य भाव रहता है जिससे द्रव्यलिंगी मुनि उपसर्ग परीषहोंको समभावोंसे सह लेता है उसकी अपेक्षा नहीं हैं। राग, द्वेष, मोह, भाव जबतक इस जीवके होते रहेंगे इसके कर्मबन्ध होता रहेगा। अतएव राग द्वेष मोहको दूर करना चाहिये। प्रवचनसारमें कहा है—

परिणामादो बन्धो, परिणामो रागदोसमोहजुदो। असुहो मोहपदोसो सुहो व असुहो हवदि रागो ॥ ९१ ॥

भावार्थ—अशुद्ध परिणामोंसे बन्ध होता है, वे परिणाम रागद्वेष मोह हैं। उनमेंसे मोह और द्वेष तो अशुभ भाव हैं। रागभाव शुभ व अशुभके भेदसे दो प्रकारका होता है। संसारकी रुचि मोहभाव है, वह अशुभ भाव है। क्रोध, मान व अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इनके उदयसे परसे द्वेषभाव होता है।

सो भी अशुभ भाव है। द्वेषसे परिणाम संक्लेशरूप दुःखित रहते हैं। मोहसे मलीन रहते हैं। मोह व द्वेषसे तो पापका ही बन्ध होता है। लोभ व माया कषाय तथा रति, हास्य, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद इनके उदयसे रागभाव होता है। यह रागभाव जब विषय कषायोंकी पुष्टिके लिये होता है तब वह अशुभ राग है और पाप बन्धका कारण है। जब कभी इन रागमें कारण कषायोंका मन्द उदय होता है तब पांच परमेष्ठीकी भक्ति, पूजा, दान, परोपकार, जप तथा स्वाध्याय आदि शुभ कामोंके करनेकी कांक्षा होती है, इसे शुभ रागभाव कहते हैं, इससे पुण्यका बन्ध भी होता है। शुभ भाव व अशुभ भाव दोनों ही बन्धमें कारण हैं। अतएव बन्धसे बचनेके लिये शुद्धोपयोगका प्रयत्न करना चाहिये।

ये ही रागद्वेष मोह भाव जब अनन्तानुबन्धी कषायके उदय सहित होते हैं तब उनको मिश्रभाव कहते हैं। साधारण रूपसे मिथ्यादृष्टी, मिथ्याज्ञानी, इन मिश्र भावोंमें फंसा रहता है। मोह और द्वेष तथा अशुभ राग अधिकतर करता है, जिससे पापका विशेष बन्ध करता है, कभी दान व परोपकारके भावसे पुण्य भी बान्ध लेता है। परन्तु वह पापानुबन्धी पुण्य होता है अर्थात् जब वह पुण्य उदयमें आता है व धनादि प्राप्त होता है तब इसे पाप कर्मोंमें खर्च करनेकी बुद्धि पैदा होती है। पंचमगति मोक्षकी प्राप्तिके लिये ये तीनों ही प्रकारके भाव त्याग करके एक शुद्ध भावकी ही भावना करनी योग्य है।

भावपाहुड़में श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिपु सयलदोसपरिचत्तो। संसारतरणहेदू धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ८१ ॥

भावार्थ—जो आत्मा रागद्वेषादि सर्व दोषोंको छोड़कर अपने आत्माके स्वभावमें लवलीन होता है वही संसार-सागरसे तिरनेका उपाय है, वही धर्म है, ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है। प्रथम ही मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायोंकी चौकड़ीको जीतना उचित है। उसका उपाय भेदविज्ञान पूर्वक स्वानुभव पानेकी रुचि है।

(३२) कारण, कार्य, दुचित्त–ये तीन भाव।

कारनं मिथ्या भयं प्रोक्तं, कार्यं दुर्गति वन्धनं।
दुचित्तं अनृतं वादे, त्रिभङ्गी नरयं पतं ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ—(कारनं मिथ्या भयं प्रोक्त) मिथ्यादर्शन सहित परिणाम संसारका कारण कहा गया है (कार्यं दुर्गति बन्धनं) उसका फल दुर्गतिका बन्ध है (अनृतं वादे दुचित्तं) तथा वाद विवादमें असत्य बोलनेकी खोटी चिन्ता है (त्रिभङ्गी नरय पतं) ये तीनों ही नरक गतिके पात्र हैं।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन संसारका कारण इसीलिये कहा गया है कि मोक्षवाड़ीका प्रथम सोपान सम्यग्दर्शनका लाभ इसके उदयमें नहीं होता है। आत्माको औरका और श्रद्धान करना, रागी द्वेषी मोही जानना, विषयसुखको सुख समझना, मिथ्या तत्वोंमें रुचि करना, हिंसादि भावोंमें धर्म मानना, रागी द्वेषी देव गुरु धर्मको मानना, ये सब मिथ्यात्व हैं। जबतक मिथ्यात्व कारण बना रहेगा तबतक उसका कार्य कुगतिका बन्ध होता रहेगा। मिथ्यात्व सहित देवगति भी कुगति है। क्योंकि वहां आत्मानन्दके लाभसे वञ्चित है। मिथ्यादृष्टी हठी होता है, मिथ्या तत्वोंकी गाढ़ श्रद्धा रखता है दूसरोंको वादविवादमें जीत लूं, इसलिये मिथ्या प्रलापोंको सोचनेकी चिंतामें लगा रहता है। पशुबलिमें धर्म है, रात्रिको खानेमें धर्म है, गंगा स्नानमें धर्म है, दीवालीमें जूआ खेलनेमें धर्म है, होली जलानेमें धर्म है, इत्यादि मिथ्या कर्मोंकी पुष्टिके लिये शास्त्र लिखता है, वाद करता है। भारतमें यज्ञोंमें पशुबलिका प्रचार नारद और पर्वतके वादसे चल पड़ा। अज शब्दके अर्थ करनेमें नारदका पक्ष था कि न उगने योग्य धान्य अज शब्दके अर्थ हैं, ये ही होममें डाले जासकते हैं। पर्वतका पक्ष था कि अजके अर्थ बकरा है। दोनोंका वाद बहुत वढ़ा तब राजा वसुके यहां न्यायको गये। वसुने पर्वतकी माताके कहनेमें आकर पर्वतका पक्ष ठीक है ऐसा कह दिया। तबसे यज्ञोंमें पशुबध चल पड़ा। पर्वतने ऐसे कुशास्त्रोंकी रचना भी करदी। ऐसा मिथ्या विचार महान् अनर्थकारी होगया। पशु समाजका घातक होगया। वास्तवमें मिथ्यात्वके समान कोई वैरी नहीं है। रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

न सम्यक्तसमं किंचित् त्रैकाले त्रिजगत्यपि। श्रेयाऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनुभृताम् ॥ ३४ ॥

भावार्थ—तीन काल व तीन लोकमें सम्यग्दर्शनके समान प्राणियोंका कोई कल्याणकारी नहीं है तथा मिथ्यात्वके समान दूसरा कोई दुःखदाता व कल्याणहर्ता नहीं है। अतएव मिथ्यात्वका त्याग ही करना योग्य है।

(३३) आलाप, लोकरंजन, शोक–ये तीन भाव।

आलापं असुद्ध वाक्यं, मिथ्या माया लोकरंजनं।
सोकं अनृतं दिस्टा, त्रिभंगी नरयं पतं ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्ध वाक्यं आलाप) अशुद्ध वचनोंका कहना आलाप है (मिथ्या माया लोकरंजनं) मिथ्या व मायाचार सहित कथन करके लोगोंको प्रसन्न करना लोकरंजन है (अनृत दिस्टा सोकं) अहितकारी बातके होनेपर शोक होता है (त्रिभंगी नरय पत) ये तीन भाव नरक गतिके पात्र हैं।

भावार्थ—संसारी मानव स्त्री, भोजन, राज्य, व राजा कथाओंमें व और भी नाना प्रकारकी विकथाओंमें लगे रहते हैं। जिन कथाओं व वाक्योंसे संसारके विषयभोगोंकी, मिथ्या श्रद्धानकी व कषायोंकी पुष्टि हो वे सब आलाप हैं। रागी जीव नाना प्रकार नाटक, उपन्यास, खेल, गान शृंगार, काम, मोहवर्द्धक बनाते हैं। उन कथाओंके द्वारा लोगोंका मन रंजायमान करके अपना स्वार्थ साधते हैं। उनसे द्रव्य प्राप्त करके सात व्यसनोंमें खर्च करते हैं। दूसरोंको व्यसनोंमें फंसाकर पापका बन्ध करते हैं। बहुधा नवयुवक नाटक खेल तमाशोंसे व वेश्याके गानोंसे व कुत्सितचर्चासे व भंड वचनोंके आलापमें रंजायमान होते हैं, कुत्सित गोष्ठी बनाकर भांग पीते हैं, बकते हैं, तास सतरंज रमते हैं, अन्यायके विषय सेवते हैं, अभक्ष्य भक्षण करते हैं, यह मनरंजन करानेवाले दोनों उसी तरह संसार–समुद्रमें डूबते हैं जैसे पत्थरकी नाव चलानेवाले व उसपर बैठनेवाले दोनों डूबते हैं।

जगतमें अनेक कुगुरु भक्तोंके मनको प्रसन्न करनेवाली कथाओंको कहकर उनसे द्रव्य संग्रह करते हैं व आप विषयोंमें खर्च करते हैं। भक्तोंको आत्माधीन धर्मको लेश भी न बताकर रागवर्द्धक व हिंसावर्द्धक क्रियाओंमें लगा देते हैं। पुत्र लाभ व धन लाभ होगा ऐसा लोभ दे देते हैं। इस लोभमें अज्ञानी

प्राणी अनर्थ करके धर्म मान लेते हैं। ऐसे आलापोंसे स्वपरको कुमार्गमें पटकनेवाले प्राणी नरकायु बांध लेते हैं। तीसरा भाव तीव्र शोक है इनके भी अनेक कारण होजाते हैं। जब कभी मिथ्या व मायाचारसे वर्तते हुए व लोगोंको रंजायमान करते हुए इष्टका लाभ नहीं होता है व अनिष्टका संयोग होजाता है व इच्छित वस्तुकी चिंता करते हुए नहीं मिलती है तब भारी शोक होता है। इष्ट वस्तुके वियोग होनेपर अज्ञानीको महान दुःख होता है। मिथ्या मोहके वशमें पड़कर कोई कोई किसी स्त्रीपर आसक्त होजाते हैं। जब उसका लाभ नहीं होता है व वियोग होता है तब शोकार्त होकर कोई २ अपना अपघात कर डालते हैं, नर्क गतिमें चले जाते हैं। बुद्धिमानोंको वही चर्या करनी चाहिये जिससे शुद्ध आत्मीक धर्मकी तरफ व लोकहित व परोपकारकी तरफ व न्यायरूप वर्तनकी तरफ प्रेम पैदा हो तथा विषय कषाय व पर उपकारसे रुचि पैदा हो। धर्मकथा व समाज व देशहित कथा स्वपरको लाभकारी हैं, जिससे कथा करनेवालेका उपयोग भी शुभ रहे व सुननेवालोंका भी उपयोग शुभ रहे, वह कथा करने योग्य कही जासकती है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

रागादिवर्द्धनाना दुष्टकथानामबोधबहुलानाम्। न कदाचन कुर्वीत श्रवणार्जनशिक्षणादीनि ॥ १४९ ॥

भावार्थ—रागद्वेष मोह बढ़ानेवाली व दूसरोंका बुरा करानेवाली दुष्ट कथाएँ तथा अज्ञानवर्द्धक चर्चाओंको न कभी सुनना चाहिये न उनको सिखाना चाहिये न ऐसी कथाएँ बनाना चाहिये। ऐसी कथाएँ दुःश्रुति अनर्थ दण्ड हैं, वृथा ही पापको बांधनेवाली होती हैं। पापवर्द्धक व रागवर्द्धक कथाओंमें अनुमोदनाका भारी दोष होता है। किसीने किसी परस्त्रीको वश करके विषयभोग किया, उसकी रंजायमान कथा सुनकर उसकी असत् क्रियामें अनुमोदना होजाती है। तब विषयभोग न भोगते हुए भी तीव्र पापका बन्ध होजाता है। समझदारोंको उचित है कि ऐसे नाटक, उपन्यास कदापि न पढ़ें जिनसे कामभावकी वृद्धि हो। धर्मोत्तेजक शास्त्रोंको व परोपकारी महान पुरुषोंके जीवनचरित्रोंको पढ़ना योग्य है। सारसमुच्चयमें कहा है—

निरवद्यं वदेद्वाक्य मधुर हितमर्थवत्। प्राणिना चेतसोऽह्लादि मिथ्यावादबहिष्कृतम् ॥ ३२० ॥

भावार्थ—वचन ऐसा बोलना चाहिये जो पापका प्रचारक न हो, मीठा हो, हितकारी हो, अर्थसहित हो, प्राणियोंके मनको प्रसन्न करनेवाला हो, परन्तु मिथ्या कथनसे रहित हो।

(३४) रसन, स्पर्शन, घ्राण–ये तीन भाव ।

रसनं स्पर्सनं भावं, घ्रानं घ्रान संजुतं ।
असुहं कर्म संप्रोक्त, त्रिभङ्गी दल पस्यते ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थ—(रसनं स्पर्शनं भाव) रसनाका व स्पर्शनका लोभ (घ्रान संजुतं घ्रानं) नाशिका इंद्रियसे सूंघनेका लोभ (असुह कर्म संप्रोक्त) अशुभ कर्म कहा गया है (त्रिभङ्गी दल पस्यते) ये तीन आस्रवके पात्र जानने चाहिये ।

भावार्थ—पाप कर्मके आस्रवके कारण पांचों इंद्रियोंके विषयके लोभसे बनते हैं। इन पांचों इंद्रियोंमेंसे तीन इंद्रियोंके विषय बहुत प्रबल देखे जाते हैं। उन्हींका इस गाथामें वर्णन है। जिह्वा इंद्रियके वशीभूत होकर मानव भक्ष्य अभक्ष्य, न्याय अन्यायका ध्यान छोड़ बैठते हैं। रस युक्त पदार्थोंके खानेकी भावनासे बाजारकी अशुद्ध मिठाई व पकवान्न व नमकीन खरीदकर खालेते हैं। ये जानते हैं कि इनके बननेमें अनछना पानी लगा है। विना जन्तुओंके हटाये हुये मैदा व शक्कर लगी है। जन्तुओंकी हिंसासे तैयार हुई यह वस्तु मर्यादा रहित है, खानेयोग्य नहीं है फिर भी जबानके स्वादवश उनको बड़े रागवश खा लिया जाता है। मादक पदार्थोंका ग्रहण भी इस रसनाके स्वादवश होता है।

रसनाकी ही लोलुपताके कारण अधिक रसीले पदार्थोंके लिये अधिक धनकी आवश्यक्ता होती है तब यदि न्यायसे आवश्यक धन नहीं मिलता है तब यह असत्य बोल करके व चोरी करके व विश्वासघात करके धन एकत्र करता है। परकी हिंसा होगी, परको कष्ट पहुँचेगा, यह भाव मनसे निकल जाता है। कठोर भाव, स्वार्थ साधनका एकांतभाव जम जाता है, ऐसा मानव धर्मके नियमोंको नहीं पाल सक्ता है। अभक्ष्य भक्षणसे व अन्याय वर्तनसे तीव्र पाप बांध लेता है। स्पर्शन इन्द्रियका लोलुपी स्वस्त्रीसे अतिशय भोग करके निर्बल व धर्महीन होजाता है, फिर भी सन्तोष नहीं पाता है। परस्त्री व वेश्याओंके प्रति सहयोग करता है, प्रचुर धनका नाश करता है। धन न्यायसे नहीं मिलता है तब अन्या-

यसे एकत्र करता है। स्पर्शन इन्द्रियका लोभी निरन्तर काम भावसे आकुल रहता है, कभी तृप्ति नहीं पाता है। धर्माचरणमें बुद्धि नहीं लगाता है। तीव्र अन्यायपूर्वक कामकी चेष्टासे तीव्र पापका वन्ध कर लेता है। तीसरी घ्राणइंद्रियका लोभी भी अतर, तेल, फुलेल, पुष्पकी सुगन्धमें लीन होकर पुष्पोंका अधिक व्यवहार करके हिंसा करता है। वास्तवमें मिथ्यादृष्टीकी श्रद्धा विषयसुखमें रहती है। वह आत्मीक सुखको पहचानता ही नहीं। इसलिये वह पांचों इंद्रियोंका लोलुपी बना रहता है। उनमेंसे स्पर्शन, घ्राण व रसना इन्द्रियोंकी अति प्रवलतासे अभक्ष्य भोजन व अन्यायके कामभोगमें रम करके महान् पापकर्मका आस्रव करता है। जो आस्रवसे वचना चाहें उनको अपनी पांचों ही इंद्रियोंपर कवजा रखना चाहिये। न्यायपूर्वक इंद्रियोंका भोग गृहस्थीको ऐसा करना चाहिये जिससे धर्मके नियमोंका पालन हो और शरीर स्वास्थ्य युक्त बना रहे। सन्तोषपूर्वक विषयभोग गृहस्थके लिये उचित है।

इंद्रियोंके विषयोंकी तृष्णा ही संसारमें भ्रमणका कारण है तथा इंद्रिय भोगोंसे कभी किसीको तृप्ति नहीं होसकती है। जितना अधिक इनसे भोग भोगा जाता है उतना अधिक तृष्णाका दाह बढ़ता जाता है। मानव जीवन आत्मीक उन्नतिके लिये है। तब इन्द्रियोंका निरोध आवश्यक है। साधुको पूर्ण इन्द्रियविजयी होना चाहिये। गृहस्थको मर्यादापूर्वक न्यायके भोगोंमें सन्तोष मानना चाहिये।

श्री शुभचन्द्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अतृप्तिजनकं मोहदाववन्हेर्महेन्धनम्। असातसन्ततेर्बीजमक्षसौख्यं जगुर्जिनाः ॥ १३-२० ॥
वर्द्धते गृद्धिरश्रान्त सन्तोषश्चापसर्पति विवेको विलय याति विषयैर्वंचितात्मनाम् ॥ १८-२० ॥

भावार्थ—श्री जिनेन्द्रोंने कहा है कि यह इंद्रियजन्य सुख तृप्ति देनेवाला नहीं है, मोहरूपी दावानलको बढ़ानेको ईंधनके समान है व आगामी कालमें दुःखोंकी परिपाटीका बीज है जिनका आत्मा इन्द्रियोंके विषयोंसे ठगाया गया है उनकी विषयलोलुपता निरन्तर बढ़ती जाती है, संतोष चला जाता है तथा विवेक भी चला जाता है।

(३५) चक्षु, श्रोत्र, उत्साह–ये तीन भाव ।

चष्यं अनृतं दिस्य, सोत्रं विकह रागयं ।
उच्छाह मिच्छमयं प्रोक्त, त्रिविधं त्रिभङ्गी दलं ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थ—(चष्यं अनृतं दिस्य) आंखोंसे नाशवन्त झूठी स्वप्नसम जगतकी अवस्थाओंको देखकर राग करता है (सोत्रं विकह रागयं) कानोंसे कुकथाओंको सुनकर राग करता है (मिच्छमय उच्छाहं प्रोक्त) इन दोनों इंद्रियोंके द्वारा मिथ्यादर्शनके कारण अधिक देखनेका व सुननेका उत्साह बढ़ जाता है ऐसा कहा गया है (त्रिविधं त्रिभङ्गी दलं) इसतरह तीन प्रकारसे यह प्राणी आस्रवका पात्र होजाता है ।

भावार्थ—ऊपरकी गाथामें तीन इन्द्रियोंके विषयोंके दोष बताए हैं, अब शेष दोके बताए हैं। चक्षु-इन्द्रिय दूरसे ही देखकर विषयका भोग करती है। इसी तरह कर्णइंद्रिय भी दूरसे शब्दोंको सुनकर विषय भोग करती है। यद्यपि शब्द कानमें भिड़कर सुनाई पड़ता है तथापि प्रगटपने शब्दोंको कोई हाथोंसे ग्रहण नहीं करता है। दूरसे सुनकरके ही जानता है। स्पर्शेन्द्रिय पदार्थसे बिलकुल भिड़कर, जिह्वा भी पदार्थका संसर्ग करके और घ्राण भी पुष्पादिका संसर्ग करके विषयभोग करते हैं।

चक्षुसे अनेक प्रकारके पदार्थोंको देखकर रागभाव होता है। रागी मिथ्यादृष्टी जीव सुन्दर शरीरके रूपको, आभूषणोंको, वस्त्रोंको, सुन्दर चालको, सुन्दर मकान, बाग, वर्तनको, सुन्दर नगर, नदी, पर्वतको, आदि देखनेयोग्य सैकड़ों प्रकारके पदार्थ हैं, मेला तमाशा नाटक खेलको व अनेक रागवर्द्धक पुस्तकोंको देखकर राग भाव बढ़ाता है। कर्णइंद्रियसे अनेक प्रकारकी विकथाओंको सुरीले रागवर्द्धक पुस्तकोंको देखकर रागभाव बढ़ाता है। कर्ण इंद्रियसे अनेक प्रकारकी विकथाओंको, सुरीले रागवर्द्धक गानेको, वार्तालापको, हास्यपूर्ण वार्तोंको सुनकर राग करता है। इन दोनों इंद्रियोंके द्वारा तृप्ति नहीं पाता है। जो वस्तुएँ देखी हैं उनके सिवाय सुन्दर वस्तुओंको देखनेका उत्साह पैदा कर लेता है। भावना यह होती है कि तीन लोकमें सब देखलूं। एक बाजारको देखकर दूसरेकी, दूसरेको देखकर तीसरेकी इसतरह तृष्णा बढ़ती जाती है। जिनके पास धनका साधन है, वे वारवार यूरुप अमेरिका आदि विदेशोंके सुन्दर दृश्योंको देखने व अनेक प्रकारके गान वादित्र सुननेको घूमा करते हैं, प्रचुर धन खरचते हैं। जगतमें चक्षु इन्द्रिय

व कर्ण इन्द्रियके लुभानेवाले अनेक साधन जितने बढ़ते जाते हैं उतना ही रागभाव अज्ञानीका बढ़ता जाता है। देखने व सुननेके लिये अन्यायका धन एकत्र कर खरचता है, कर्जदार तक होजाता है।

अशुभ रूप देखकर व अशुभ शब्द सुनकर द्वेष करता है। गाली व अपनी निंदा सुनकर द्वेषी बन जाता है। मान कषायके वशीभूत जरासी भी अपमानकी बातको सुन सह नहीं सक्ता है। कहनेवालोंके पीछे पड़ जाता है। स्त्रियोंके रूपके पीछे मोहित होकर व कठोर शब्दोंको सुनकर बड़े २ युद्ध छिड़ जाते हैं।

चक्षु इन्द्रिय व कर्ण इन्द्रियका बड़ा भारी सदुपयोग किया जासकता है। वैसा अन्य तीन इन्द्रियोंका नहीं होता है। चक्षु द्वारा अनेक उपयोगी शास्त्रोंका व अनेक संत पुरुषोंका, अनेक तीर्थस्थानोंका, मंदिरोंका, सारभूत चित्रोंका, भोजनपानकी शुद्धिका अवलोकन कर व भूमिको निरखकर चलनेसे, निरख कर, रसने उठानेसे, निरख कर भोजनादि बनाने व करनेसे बहुत बड़ा अपना उपकार किया जासक्ता है। आगम ज्ञान व सत्संगति मोक्षमार्गमें सहकारी है। चक्षुइंद्रिय द्वारा इस लाभको लिया जासक्ता है। कर्णइन्द्रियसे साधुओंकी व विद्वानोंकी वाणी सुनकर धर्मका लाभ लिया जासक्ता है। आध्यात्मीक वैराग्यवर्द्धक भजन व वादित्र व गान सुनकर परिणामोंको उज्वल किया जासक्ता है। उत्तम कथाओंको सुनकर, व जीवनचरित्र सुनकर, व सारगर्भित भाषणोंको सुनकर, अपने जीवनको उपयोगी बनाया जासकता है।

बुद्धिमान मानवका कर्तव्य है कि पांचों इंद्रियोंका सदुपयोग करे। जिह्वासे शुद्ध भोजन करे व धर्मका उपदेश करे, स्पर्शसे दुःखी रोगी जनोंकी सेवा वैयावृत्य करे। घ्राणसे पदार्थोंकी व स्थानकी परीक्षा कर स्वास्थ्य हानिकारक पदार्थोंका त्याग करे। चक्षुसे शब्दोंको देखे, कानसे उपदेश सुने।

जो इंद्रियोंको वश रखते हैं वे जीवनको सफल बनाते हैं। जो पुण्यसे प्राप्त विषयोंमें सन्तोषी हैं वे स्वपर उपकारमें जीवन विता सक्ते हैं व सुखी रह सक्ते हैं। सारसमुच्चयमें कहा है—

तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति हितं वा यदि वाहितम्। सन्तोषाञ्जनमासाद्य पश्यन्ति सुधियो जनाः २३९ ॥

भावार्थ—जो मानव विषयभोगोंकी तृष्णामें लीन हैं वे अपना हित व अहित नहीं विचारते। बुद्धिमान पुरुष सन्तोषरूपी अञ्जन आंखमें लगाकर अपना सच्चा हित देखते रहते हैं।

हृदय दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णाग्निपरितापितं। न शक्यं शमनं कर्तुं विना सन्तोषवारिणा ॥ २४९ ॥

भावार्थ—तृष्णाकी आगसे पीडित मन अतिशय करके जला करता है। सन्तोषरूपी जलके विना उस जलनका शमन नहीं किया जासक्ता।

(२६) आहार, निद्रा, माया—ये तीन भाव।

आहारं असुधं भावं, निद्रा मिथ्यात भूतयं।
भावं सुद्ध तिक्तं च, त्रिभङ्गी संसार भाजनं ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ—(असुद्धं भाव आहार) अशुद्ध रागद्वेष भावको रखना ही आहार है (मिथ्यात भूतय निद्रा) मिथ्यात्वभावसे मूर्छित रहना ही निद्रा है (भाव सुद्ध तिक्तं च) भावोंकी शुद्धिको छोड़कर जगतमें फंस जाना माया है (त्रिभङ्गी सार संसार भाजनं) ये तीन भाव संसारके भ्रमणकारक हैं।

भावाथ—यह संसारी मिथ्यादृष्टी प्राणी निरन्तर रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध भावोंको ग्रहण करता रहता है यही इसका आहार होरहा है। इसी आहारसे इस अज्ञानीका जीवन है। रात दिन विषयोंका राग रहता है। विषयके साधक चेतन व अचेतन पदार्थोंका राग रहता है। जो विषय साधनमें विरोधी हैं उनसे द्वेष रहता है। कभी भी क्रोध, मान, माया, लोभकी तीव्रताको छोड़ता नहीं। अथवा अनन्तानुबन्धी कषायके उदयको भोगता है। यही आहार है जिससे कभी भी सम्यक्त भावको नहीं पाता। अज्ञानीकी निद्रा, मिथ्यात्वका तीव्र भाव होना है। जैसे नींदमें प्राणी बिलकुल अचेत होजाता है वैसे यह अज्ञानी विलकुल अचेत होरहा है। अपने मूल शुद्ध द्रव्य स्वरूपको भूले हुए है। आत्माके ध्यानसे बेखबर है, अतीन्द्रिय सुखसे अज्ञान है, मिथ्यात्वके बलसे अपनेको जिस पर्यायमें होता है वैसा माना करता है। अपने आत्माके कार्यमें सोया हुआ है। मोक्षमार्गके ज्ञान श्रद्धानमें निद्रित है। भावोंकी शुद्धिको न पाकर संसारकी मायामें फँसा है। शुद्धोपयोग जो अपना स्वाभाविक भाव है उसको त्यागे हुए है। कर्मजनित भावोंमें फँसा हुआ कभी पुण्य, कभी पाप करता है। सांसारिक पदार्थोंके भोग उपभोगमें लीन है। सुखी दुःखी होता है। क्षणमें सन्तोषी, क्षणमें आकुलित होजाता है, क्षणमें हर्षित, क्षणमें शोकित होजाता है। ये तीन आहार, निद्रा व मायाके भाव संसार भ्रमणके मूल कारण हैं।

जैसे कोई मूर्ख आहार करे, नींद लेवे व मोहमें फंसा रहे, स्त्री पुत्रोंसे प्रेम किया करे, धनागमका साधन न करे, तो कुछ दिनोंमें दलिद्री होकर कष्ट पावेगा, वैसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जीव मिथ्यात्व-भावमें फंसा हुआ-राग द्वेष करके जगतकी मायामें फंसा रहता है, निगोदमें चला जाता है, भववनमें भटकता है, इंद्रियोंके विषय-जालमें उलझा रहता है, कभी भी अतीन्द्रिय आनन्दको नहीं पाता है।

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामीने कहा है—

चिरं सुपुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिपु। अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति ॥ ५६ ॥

भावार्थ—मूढ़ मिथ्यादृष्टी बहिरात्मा अनादिकालसे सोए हुए हैं, भवभवमें भ्रमण करते हैं। जो अपने अशुद्ध भाव हैं उनको ही आप मान रहे हैं। मैं रागी व द्वेषी हूं इत्यादि व जो अपनेसे भिन्न हैं उनको अपना मान रहे हैं। मेरा शरीर, मेरा धन, मेरा कुटुम्ब, मेरा घर आदि यह ममकार है। इस-तरह अहंकार ममकारमें जाग रहे हैं।

व्यवहारे सुपुप्तो य. स जागर्त्यात्मगोचरे। जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुपुप्तश्चात्मगोचरे ॥ ७८ ।

भावार्थ—जो कोई जगतकी मायामें निद्रित है वही आत्माके स्वरूपमें जाग रहा है तथा जो जगतकी मायामें जाग रहा है वह आत्माके सुखमें सोया हुआ है।

भगवती आराधनामें शिवकोटि आचार्यने मोही प्राणीकी दशा बताई है—

कोहि डहिज्ज जइ चदणं णरो दारुग च बहुमोल्लं ' णासेइ माणुस्सभवं पुरिसो तह विसयलेभेण ॥ १८२८ ॥

छंडिय रयणाणि जहा रयणद्दीवा हरिज्ज कट्ठाणि। माणुसभवे विछंडिय धम्मं भोगेऽभिलसदि तहा ॥ १८२९ ॥

गतूण णंदणपण अमिय छडिय विस जहा पियइ। माणुस भवे विछंडिय धम्म भोगेऽभिलसदि तहा ॥ १८३० ॥

भावार्थ—जैसे कोई मानव बहुमूल्य चन्दनके वृक्षको लकड़ी या ईंधनके लिये जला डाले वैसे ही अज्ञानी इंद्रिय विषयोंके लोभसे इस मनुष्य जन्मको नाश कर डालता है। जैसे कोई रत्नद्वीपमें जाकर रत्नोंको छोड़ देवे और काठ ग्रहण करले वैसे अज्ञानी इस मनुष्य जन्ममें धर्मको छोड़कर भोगोंकी तृष्णा करता है। जैसे कोई नन्दनवनमें जाकर अमृतको छोड़ विष पान करले, वैसे ही अज्ञानी इस भव काननमें धर्मको छोड़कर भोगोंकी अभिलाषा करता है।

अध्याय दूसरा।

त्रिभंगी आस्रव दल भाव निरोधन भाव।

प्रतिज्ञा।

त्रिभङ्गी प्रवेसं संप्रोक्तं, भव्यात्मा हृदये चिंतति।
तेनाहं निरोधनं कृत्वा, जिन उक्तं सुद्ध दिस्टितं ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थ—(त्रिभङ्गी प्रवेसं संप्रोक्त) तीन तीन भावोंके समूह जो कर्मके आस्रवके कारण हैं उनको कहा गया है (भव्यात्मा हृदये चिंतति) उनको समझकर भव्यजीव हृदयमें विचारता है (तेन अहं जिन उक्त सुद्ध दिष्टित निरोधनं कृत्वा) कि मैं इसलिये जिनेन्द्र कथित शुद्ध सम्यक्‌दशनको जानकर इस आस्रवका निरोध करूँगा।

भावार्थ—ऊपर कथित छत्तीस त्रिभङ्गी दलोंमें कर्मोंके आस्रव व बन्धके कारण भावोंको बताया गया है। इनको भलेप्रकार भव्यजीवको मनन करना चाहिये तथा सर्व ही कुभावोंसे वैराग्य भाव लाना चाहिये। जैसे नावमें पानी आनेका द्वार हो तो उसको डांट लगाकर बन्द करते हैं वैसे कर्मोंके आनेके जो ३६ त्रिभङ्गी द्वार कहे हैं उनके द्वारा कर्म आते हैं, उनको बन्द करनेके लिये उनके निरोधक संवरभावको भी जानना चाहिये। जिनेन्द्रने जो शुद्ध सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रय मार्ग बताया है वही संसारके बन्धका निरोधक है, उसे भलेप्रकार जानकर व उसपर चल करके आस्रवका निरोध करना चाहिये।

(१) देव, गुरु, शास्त्र—ये तीन आस्रव निरोधन भाव।

देव देवाधि देवं च, गुरु ग्रन्थ च मुक्तयं।
धर्म अहिंसा उत्पाद्यं, त्रिभङ्गी दल निरोधनं ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(देव देवाधि देव च) देवोंके अधिपति परम देव परमात्मा तो यथार्थ देव हैं (ग्रन्थ मुक्तयं

च गुरु) परिग्रहके त्यागी निर्ग्रन्थ साधु गुरु हैं (अहिंसा धर्म उत्पाद्य) अहिंसा धर्मको पुष्ट करनेवाला शास्त्र है

(त्रिभङ्गी दल निरोधन) इन तीनोंकी सेवा कर्म बन्धको रोकनेवाली है।

भावार्थ—आत्महितैषीको प्रथम ही उचित है कि वह उस आदर्शको जाने जिसे वह प्राप्त करना
चाहता है। आदर्शको सामने रखनेसे उस आदर्शपर पहुँचनेकी उमंग होती है। जिस पर्वतपर
पहुँचना है उसकी चोटी दिखती है तब पहुँचनेकी भावना दृढ़ होती है। जिस राज्य महलमें जाना है
उसको जानना जरूरी है कि वह है। इसलिये कर्म बन्धसे रहित आत्माको जानना आवश्यक है,
जब हम स्वयं कर्मके बन्धसे छूटना चाहते हैं। अतएव यथार्थ देव वही है जो कर्मबन्धसे मुक्त है,
शुद्धात्मा है। जिसके आत्मामें वे दोष नहीं हैं जो कर्मबन्ध सहित आत्मामें होते हैं। अर्थात् कोई
प्रकारकी इच्छा, रागद्वेष, मोह, कामभाव, विकल्प नहीं है, पूर्ण वीतरागता है। न कोई प्रकारका
अज्ञान है इसलिये सर्वज्ञता है। सर्वज्ञ वीतराग आत्माको ही परमात्मा देव कहते हैं, जिनकी भक्ति
बड़े २ इंद्र करते हैं। शरीर सहित जीवन्मुक्त परमात्माको अरहन्त देव कहते हैं, जिनका आत्मा चार
घातीय कर्मोंसे मुक्त होचुका है। इसलिये उनमें नौ क्षायिक भाव प्रगट हैं—क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक
चारित्र, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य,
तथा चारों घातीय कर्मोंके क्षयसे जिनके भीतर अनंत सुख प्रगट है, जो निरन्तर स्वस्वरूपमें लीन होकर
परमानन्दमई अमृतका पान कर रहे हैं। अभी चार अघातीय कर्म शेष हैं, उनके उदयके कारण उनका
देशमें विहार व धर्मोपदेश होता है इसीसे अरहन्तको हितोपदेशी कहते हैं। उनहीके द्वारा धर्मका सच्चा
स्वरूप प्रगट होता है। इसलिये उनको आप्त या वक्ता कहते हैं। इस आर्यखण्डमें हरएक उत्सर्पिणी व
अवसर्पिणी कालमें चौवीस तीर्थंकर पदधारी क्षत्रियवंशी महापुरुष होते रहते हैं। वे परिग्रह त्याग निर्ग्रंथ
साधु हो आत्मध्यान करके अरहन्त होजाते हैं। ऐसे तीर्थंकर अरहन्त इस वर्तमान अवसर्पिणी कालमें
ऋषभदेवसे लेकर वर्द्धमान पर्यंत चौवीस हुए हैं। इनको परम देव मानना चाहिये। इनके सिवाय तीर्थंकर
पदके विना भी सामान्य मानव जो अरहन्त पदपर पहुंचे हैं वे भी अरहन्त मानने योग्य हैं। जैसे श्री
बाहुबलि, भरत, रामचन्द्र, हनूमान, इंद्रजीत, कुम्भकर्ण, सुग्रीव, वालि, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, गौतम-
स्वामी, सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी आदि २। ये सब ही अरहन्त जब आयुके अंतमें शेष चार कर्मोंको भी

नाश कर मुक्त व शरीर रहित परम शुद्ध होजाते हैं उनको सिद्ध कहते हैं। अरहन्त व सिद्ध ही आदर्श देव हैं। इनकी भक्ति, पूजा, हमारे भावोंको उन समान होनेकी भावना दृढ़ करनेवाली है।

अरहन्तका लक्षण आप्तपरीक्षामें श्री विद्यानंदस्वामीने कहा है—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां। ज्ञातारं विश्वतत्वानां वंदे तद्गुणलब्धये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मोक्षमार्गका दिखानेवाला हो, कर्मरूपी पर्वतोंको चूर्ण करनेवाला हो व सर्व तत्वोंका जाननेवाला हो वही अरहंतदेव हैं। उनको मैं उनके गुणोंकी प्राप्तिके हेतु नमस्कार करता हूँ।

समाधिशतकमें सिद्धका स्वरूप कहा है—

निर्मल: केवल: सिद्धो विविक्त: प्रभुरक्षय:। परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिन: ॥ ६ ॥

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा रागादि रहित निर्मल हैं, केवल एक स्वाधीन हैं, साध्य जो शुद्धपद उसको सिद्ध कर चुके हैं, सर्व परद्रव्य व परभावोंसे रहित हैं, तीन लोकसे पूज्यनीय स्वामी हैं, अविनाशी हैं, परमपदमें रहनेवाले परमेष्ठी हैं, उत्कृष्ट आत्मा हैं, परम ऐश्वर्यमई अनन्त ज्ञानादि गुणोंसे पूर्ण ईश्वर हैं, आठों कर्मोंको जीतनेसे जिन हैं। सिद्धकी भक्ति सिद्धपदमें पहुँचनेवाली है। गुरु वही है जो ग्रन्थ या परिग्रह या गांठ या मूर्छासे रहित निर्ग्रंथ हो। बाहरी परिग्रह दश प्रकारके हैं, जो अन्तरंग मूर्छाका बाहरी कारण है तथा चौदह प्रकारके विकार कारक भाव हैं, वे अन्तरंग परिग्रह हैं, इन दोनोंसे रहित निर्ग्रंथ हैं। क्षेत्र, मकान, चांदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र, वर्तन, इन १० प्रकार वस्तुओंसे रहित नग्न दिगम्बर साधु हैं। अँतरंगमें बुद्धिपूर्वक मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, दु:ख, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद, इन चौदह दोषोंके ममत्वसे रहित हैं। ऐसे निर्ग्रंथ जैनके साधु यथाजात बालकके समान निर्विकारी जितेन्द्रिय, सरल, समभाव धारी होते हैं। जीवदयाका उपकरण मोर पीछी, शौचका उपकरण काठका कमण्डल जलके लिये, व ज्ञानका उपकरण शास्त्र मात्र रखते हैं। भिक्षासे एकवार दिनमें भोजनपान करते हैं। निरन्तर ज्ञान ध्यानमें लीन रहते हैं। ऐसे निर्ग्रन्थ साधुओंमें जो बहुत अनुभवी व संचालक होनेके योग्य होते हैं उनको आचार्यपद होता है। जो विशेष व्याख्याता व पढ़ानेकी योग्यता रखते हैं उनको उपाध्यायपद होता है। शेष सब साधु पदधारी हैं। गुरुका स्वरूप श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है—

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रह । ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥

भावार्थ—जो पांचों इंद्रियोंकी आशासे रहित हैं, खेती आदि आरंभसे वर्जित हैं, सर्व परिग्रहके त्यागी हैं, शास्त्रज्ञान, आत्मध्यान व तपमें लीन हैं, ऐसे तपस्वी निर्ग्रन्थ साधु गुरु हैं। आदर्शपर जो चलनेवाले होते हैं, वे आदर्शको समझकर व उस मार्गपर अन्योंको चलाकर मोक्षमार्गको प्रवर्ताते हैं, मोक्षमार्ग बताते हैं, इसलिये गुरुको भी जाननेकी जरूरत है, गुरुसे तत्वज्ञानका लाभ होता है।

तीसरे-शास्त्रकी भी आवश्यक्ता है। शास्त्र वही सचा व जिन प्रणीत है जिसमें अहिंसाका पूर्णपने प्रतिपादन हो। मोक्षका मार्ग अहिंसा है। अंतरंग अहिंसा रागद्वेष मोह रहित वीतराग, समभाव, स्वरूपाचरण या स्वानुभव है, बाहरी अहिंसा स्थावर व त्रस सर्व प्राणी मात्रकी दया है, रक्षा है। जिस शास्त्रमें सर्व प्राणियोंके हितका कथन है व जैसी वस्तु अनेक स्वभाववाली है उसका वैसा ही कथन है। इसलिये अनेकान्त स्वरूप है। शास्त्रका लक्षण रत्नकरण्ड श्रावकाचारमेंकहा है—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् । तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्र कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो परम्परा आप्त अरहन्तका कहा हुआ हो, अखण्डनीय हो, प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाणसे बाधा रूप न हो, तत्वोंका उपदेश करनेवाला हो, सबका हितकारी हो, कुमार्गका खण्डन करनेवाला हो वह शास्त्र है।

इस तरह देव, गुरु, शास्त्रका स्वरूप जानना चाहिये। यहां अन्तमें शास्त्रको इसलिये कहा है कि शास्त्रके सम्पादक गुरु होते हैं। गुरुको ज्ञान अरहन्तकी वाणी द्वारा आचार्यक्रमसे होता है। तथा देव व गुरुमें पांच परमेष्टी गर्भित हैं। जैसे णमोकार मन्त्रसे सिद्ध है—

णमोकार मन्त्र।	अर्थ।
१–णमो अरहंताणं।	इस लोकमें सर्व अरहन्तोंको नमस्कार हो।
२–णमो सिद्धाणं।	” सर्व सिद्धोंको ”
३–णमो आइरियाणं।	” ” आचार्योंको ”
४–णमो उवज्झायाणं।	” ” उपाध्यायोंको ”
५–णमो लोए सव्वसाहूणं।	” ” साधुओंको ”

इस तरह देव गुरु शास्त्र पर सची श्रद्धा रखके उनकी भक्ति करनेसे आस्रवका विरोध होगा। इसलिये आत्महित करनेवालोंको उचित है कि वह नित्य प्रति अरहंत व सिद्धकी पूजा व स्तुति करें। गुरुकी सेवा करके ज्ञान लेवे, शास्त्रोंका स्वाध्याय करें व सामायिकके समय आत्माका मनन रूप स्वाध्याय करें। इन चार कार्योंको नित्य करनेसे परिणामोंमें वीतरागताके अंश बढ़ेंगे, कषायके अंश घटेंगे, मंदकषाय होगी। उसका फल यह होगा कि चार घातीय कर्म व असाता वेदनीयादि पापकर्मकी अनुभागशक्ति घटेगी, इनका रस सूखेगा अर्थात् पाप कटेगा व सातावेदनीयादि पुण्यकर्मका रस बढ़ेगा। व नया बंध असातादि पापकर्मका न होगा। सातादि पुण्यकर्मका होगा व घातीय कर्मोंका बंध अल्प स्थिति व अल्प अनुभागको लिये हुए होगा। देव गुरु शास्त्रकी आराधना पापास्रवको रोकनेमें प्रबल कारण है। इसलिये तारणस्वामीने सबसे पहला उपाय आस्रवके निरोधका यही बताया है।

(२) दर्शन, ज्ञान, चारित्र–ये तीन भाव।

(३) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र–ये तीन भाव।

दसनं तत्तु सर्धानं, न्यान तत्तु निवेदयं।
स्थिरं तत्तु चारित्र, त्रितियं सुद्धात्मा गुनं॥ ४७॥
सम्यकदर्शनं न्यानं, चारित्रं सुद्धात्मनं।
स्वस्वरूपं च आराध्यं, त्रिभङ्गी समय खण्डनं॥ ४८॥

अन्वयार्थ—(त॒ सर्धानं दर्सनं) सात तत्वोंका या आत्मतत्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है (तत्तु निवेदयं न्यानं) तत्वोंका अनुभव पूर्वक जानना सम्यग्ज्ञान है (तत्तु स्थिरं चारित्रं) आत्मतत्वमें स्थिर होना सम्यक्चारित्र है (त्रितियं सुद्धात्मा गुन) ये तीनों ही रत्नत्रय शुद्धात्माके गुण हैं।

(सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चारित्रं शुद्धात्मनं स्वस्वरूपं च) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्धात्मा ही है, आत्माका अपना ही स्वभाव है (आराध्यं) इसलिये यही निज स्वरूप आराधना करने योग्य है (त्रिभंगी समय खण्डनं) ये रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही आस्रव भावोंको खण्डन करनेवाला है।

भावार्थ—इन दोनों गाथाओंका एकसा ही भाव है। इसलिये दोनोंका भावार्थ साथ२ लिखा जाता है। वास्तवमें कर्मके आस्रवको रोकनेवाला व पूर्व कर्मको खण्डन करनेवाला उपाय एक रत्नत्रय धर्म है। इसके दो भेद हैं–व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय। निश्चय रत्नत्रय आत्मानुभवरूप है। यही यथार्थमें कर्मास्रवको दूर करनेवाला है। सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है, वैसे ही ज्ञान भी आत्माका स्वभाव है, वैसे चारित्र भी आत्माका स्वभाव है, तीनों ही अखण्ड आत्मामें इसतरह व्यापक स्वभाव हैं जैसे सुवर्णमें पीतपना, भारीपना, चिकनापना व्यापक है या अग्निमें दाहकपना, पाचकपना व प्रकाशकपना व्यापक है। आत्माका आत्मारूप जैसाका तैसा श्रद्धान सम्यक्त है। ऐसा ही सन्देह रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है व इसी ज्ञान श्रद्धानमें स्थिर होना सम्यक्चारित्र है। आत्मा स्वभावसे, द्रव्य दृष्टिसे सदाकाल एक स्वभाव है, अमूर्तीक है, ज्ञानदर्शनमय है, वीतराग है, आनन्दमय है, गुणपर्यायवान है, उत्पाद व्यय ध्रुवरूप है, परम निश्चल है, परमानन्दमय है, सिद्ध भगवानके समान है। ऐसा श्रद्धान व ज्ञान व उसी भावमें लवलीन होना निश्चय रत्नत्रय है। सो यह आत्माका स्वरूप है, स्वसमयरूप है। मन वचन कायके अगोचर एक अद्भुत स्वसंवेदन ज्ञान है या ज्ञान चेतना है। यही आत्मध्यानकी अग्नि है, इसीसे संवर होता है व निर्जरा होती है, यही मोक्षमार्ग है। ज्ञानीको सदा ही स्वानुभवका आराधन करना चाहिये।

व्यवहार रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्तिके निमित्त सहायक हैं। जैसे तिलोंसे तेल निकालनेमें घानी चलाना निमित्त सहायक है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन सात तत्वोंको मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत जानकर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सातों तत्वोंको जानना व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। ऐसा जानना कि अजीव पर है। आस्रव व बन्ध अशुद्धताके कारण त्यागने योग्य हैं। संवर, निर्जरा, मोक्ष शुद्धताके कारण ग्रहण करने योग्य हैं।

इनमेंसे बंधके कारणोंसे बचकर संवर व निर्जराके कारणोंमें प्रवृत्ति करनेके लिये साधुका महाव्रतरूप व गृहस्थका अणुव्रतरूप आचरण पालना व्यवहार सम्यक्चारित्र है। उपादान निमित्तसे कार्य

होता है। सुवर्णके शुद्ध होनेमें सुवर्ण ही उपादान है, मसाला व आग निमित्त है, इसीतरह आत्माके शुद्ध होनेमें आत्मा ही उपादान है। आत्माका निजरूपका ध्यान ही उपादान है, व्यवहार चारित्र निमित्त है।

तत्वानुशासनमें श्री नागसेन मुनि कहते हैं—

मोक्षहेतु: पुनर्द्वेधा निश्चयव्यवहारतः। तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद्वितीयस्तस्य साधन ॥ २८ ॥

अभिन्नकर्तृकर्मादिविषयो निश्चयो नयः। व्यवहारनयो भिन्नकर्तृकर्मादिगोचरः ॥ २९ ॥

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्व ज्ञानमधिगमस्तेषा। चरण च तपसि चेष्टा व्यवहाराद् मुक्तिहेतुरयं ॥ ३० ॥

निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिरेभिर्य: समाहितो भिक्षुः। नोपादत्ते किंचिन्न च मुञ्चति मोक्षहेतुरसौ ॥ ३१ ॥

यो मध्यस्थ: पश्यति जानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा। दृगवगमचरणरूपस्स निश्चयान्मुक्तिहेतुरिति जिनोक्तिः ॥३२॥

भावार्थ—मोक्षका मार्ग निश्चय तथा व्यवहारसे दो प्रकारका है। निश्चय मार्ग साधने योग्य है, व्यवहार साधन है। जहां कर्ता कर्म साधक साध्य आदि एक आत्मा ही हो वह निश्चय मोक्षमार्ग है। जहां निज कर्ताकर्म आदि हो वह व्यवहार है। धर्मादि छः द्रव्य अर्थात् जीव, अजीवादि सात तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्त है। इनहीका जानना ज्ञान है। तपमें उद्यम चारित्र है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। व्यवहार रत्नत्रय सहित जो साधु न कुछ ग्रहण करता है न कुछ त्यागता है, वहां निश्चय मोक्षमार्ग है। जो वीतरागी आत्मा अपने ही आत्माके द्वारा अपने ही आत्मामें अपने ही आत्माको निश्चल होकर देखता जानता है वही निश्चय रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। आत्मध्यान ही निश्चय मोक्षमार्ग है, ऐसा ही प्रवचनसारमें कहा है—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे सन्ति णाणमहमेक्को। इदि जो झायदि झाणो सो अप्पाण हवदि झादा ॥ ९९–२ ॥

भावार्थ—न मैं दूसरोंका हूँ न दूसरे पदार्थ मेरे हैं, मैं अकेला हूँ ऐसा जो ध्यानमें ध्याता है वह आत्माको ध्यानेवाला है।

(४) सम्यक् संयम, सम्यक् तप, सम्यक् परिनै–ये तीन भाव।

सम्यक् संजमं तवं चिंते, सम्यक् परिनै तं ध्रुवं।
सुद्धात्मा चेतना रूवं, जिन उक्तं सुद्ध दिष्टितं ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थ—(सम्यक् संजमं तवं चिंते) सम्यग्दर्शन पूर्वक संयमकी भावना करना, सम्यग्दर्शन सहित तपकी भावना करना (सम्यक् परिनै तं ध्रुवं) सम्यग्दर्शन सहित पारिणामिक भाव जो अपना अविनाशी भाव है उसमें परिणमन करना ये तीन भाव (सुद्धात्मा चेतना रूपं) शुद्धात्माके चैतन्यमई स्वभाव है (सुद्ध दिष्टितं) ऐसा शुद्ध निश्चय दृष्टिसे (जिन उक्तं) जिनेन्द्रने कहा है।

भावार्थ—व्यवहार संयम दो प्रकार है–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस इन छः प्रकारके प्राणियोंकी रक्षा करनी प्राणी संयम है। पांच इंद्रिय व मनका निरोध इंद्रिय संयम है। अथवा सकल देश हिंसा असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांचों पापोंका त्याग सकल संयम है। तथा एकदेश इन पापोंका त्याग एकदेश संयम है। इस व्यवहार संयमकी सहायतासे मन वचन कायको थिर करके अपने स्वरूपमें स्थिर होकर आत्मानुभव करना सम्यक् संयम है। क्योंकि सम्यग्दर्शनके विना स्वरूपमें भलेप्रकार थिर भाव नहीं होता है। छः बाहरी, छः अतरंग दो प्रकार व्यवहार तप है। उपवास, ऊनोदर, वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश, छः बाहरी तप हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान, ये छः अतरंग तप हैं। इन बारह तपोंके द्वारा मन वचन कायको थिर करके सम्यग्दर्शन सहित अपने ही आत्माके स्वरूपमें एकतान हो तपना सो सम्यक् तप है। सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध जीवत्व नामके पारिणामिक भावमें परिणमन् करना, रमण करना, सम्यक्परिनै है। कहनेको ये तीन हैं। परन्तु वास्तवमें ये तीनों ही शुद्धात्माका चैतन्यमई एक स्वानुभवरूप भाव है। शुद्ध निश्चयनयसे एक आत्मा ही है। आत्मामें लीन होना सो ही संयम है, सो ही तप है, सो ही स्वपरिणमन है।

योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

अप्पा दंसणु णाण मुणी अप्पा चरणु वियाणि। अप्पा संजम सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ॥ ८० ॥

भावार्थ—यह अपना आत्मा ही निश्चयसे सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, यही आत्म संयम है, यही शील है, यही आत्मातप है, यही त्याग है ऐसा जानो।

जो णिम्मल अप्पा मुणइ वय सजमुसंजुत्तु। तउ लहु पावइ सिद्ध सुह इउ जिणणाहह वुत्तु ॥ ३० ॥

भावाथ—जो व्रत व संयम सहित अपने निर्मल आत्माका अनुभव करता है वह शीघ्र ही सिद्ध सुखको पाता है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है—

वउतउसजमुसील जिया इय सव्वइ ववहारु। मोक्खह कारण एक मुणो जो तइलोयहु सारु ॥ ३३ ॥

भावार्थ—व्रत, तप, संयम, शील ये सब हे जीवात्मा! व्यवहार मोक्षमार्ग हैं। निश्चयसे तीनलोकमें सार मोक्षका कारण एक स्वात्मानुभवको जानो।

(५) भाव, शुद्ध, प्रमाण-ये तीन भाव।

भावेन भाव सुद्धं, परमानं स्वात्म चिंतनं।
जिन उत्तं उदयं सार्थं, त्रिभङ्गी दल षंडितं ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—(भावेन भाव सुद्धं) भावना करनेसे भावकी शुद्धि होती है (परमानं स्वात्म चिंतनं) उससे स्वात्मानुभव प्रमाण श्रुतज्ञान होता है (जिन उक्तं उदयं सार्थं) यही जिनेन्द्र कथित परमार्थ तत्वका प्रकाश है (त्रिभंगी दल षडित) भावना, शुद्ध भाव व प्रमाणरूप स्वात्मानुभवसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—स्वात्मानुभवकी प्राप्तिका उपाय शुद्धात्माका लाभ है। शुद्धात्माका लाभ भेदज्ञानकी भावना करनेसे होता है। यह अपना आत्मा निश्चयनयसे परम शुद्ध पदार्थ है। भावकर्म रागद्वेषादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादिसे भिन्न है। यह आत्मा अपने गुणोंसे अभेद है। जैसे तिलमें तेल भिन्न है, भूसी भिन्न है, धान्यमें चावल भिन्न है, दालमें छिलका भिन्न है, दाल भिन्न है। इसतरह आत्मा सर्व परद्रव्योंसे, परभावोंसे, परपर्यायोंसे भिन्न है। सिद्धके समान शुद्ध द्रव्य है। ऐसी वारवार भावना करनेसे शुद्धात्माका लाभ अर्थात् मैं शुद्धात्मा हूँ ऐसा श्रद्धान होजाता है। यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है, तब सम्यग्दर्शनके प्रतापसे स्वात्मानुभव होता रहता है। स्वात्मानुभव ही जिन कथित परमार्थ

घर्मका प्रकाश है। इसीसे कर्मोंका संवर व पूर्व कर्मकी निर्जरा होती है। इसीको भाव श्रुतज्ञान कहते हैं। जो आत्माका यथार्थ अनुभव करता है, उसीने द्वादशांग वाणीका सार पालिया। यही भाव श्रुत-ज्ञान केवलज्ञानका कारण है। समयसार कलशमें कहा है—

चैद्रूप्यं जडरूपता च दधतोः कृत्वा विभाग द्वयोरन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।
भेदज्ञानमुदेति निर्म्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः। शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना संतो द्वितीयच्युता' ॥ २-६ ॥

भावार्थ—यदि रागभावके सम्बन्धमें विचार किया जाय तो विदित होगा कि इसमें चैतन्य भावको रखनेवाला तो ज्ञान है व रागकी कलुषताको रखनेवाला मोहनीय कर्मरूप जड़पदार्थ है। जड़को छोड़कर संतोंको योग्य है कि भेदज्ञानके द्वारा एक अपने ज्ञानमई आत्माका अनुभव करके आनन्दलाभ करें।

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भाद्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्म्मणा संवरेण।
बिभ्रत्तोष परमममलालोकमम्लानमेकं, ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदित शाश्वतोद्योतमेतत्॥ ८-६ ॥

भावार्थ—भेद विज्ञानकी वार वार भावनाके अभ्याससे शुद्ध आत्मतत्वका लाभ होकर स्वानुभव होता है तब उससे रागका ग्राम जल जाता है, कर्मोंका संवर होता है। इसी स्वानुभव रूप श्रुतज्ञानके द्वारा अविनाशी प्रकाश रूप निर्मल, उत्कृष्ट, निराकुल एक केवलज्ञान झलक जाता है। अतएव साधकको भेदज्ञानके द्वारा स्वानुभवको पाना उचित है।

(६) चेत्य, उत्पाद्य, शास्वतं-ये तीन भाव।

चेतनं चेतना रूपं, उत्पाद्यो सास्वतं धुवं।
जिन उक्तं सुद्ध चैतन्यं, त्रिभङ्गी दल निरोधनं ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—(चेतना रूप चेतनं) चैतन्य स्वभावमें मगनता चेतना या स्वानुभव है (उत्पाद्यः) जिससे केवलज्ञानका प्रकाश होकर अरहंतपद होता है फिर उससे (सास्वतं धुवं सुद्ध चेतन्य) अविनाशी निश्चल शुद्ध सिद्धपद होता है (जिन उक्तं) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (त्रिभंगी दल निरोधनं) ये तीन भाव सर्व कर्म-समूहके निवारक हैं।

भावार्थ—वास्तवमें निश्चय नयसे विचार किया जावे तो कर्मोंके संवर व निर्जराका उपाय एक ज्ञानचेतना रूप होता है, जहां ज्ञानसे ज्ञानका स्वाद लिया जावे। शुद्ध ज्ञानमें मगन हुआ जावे वही ज्ञानचेतना है। यहां राग द्वेष पूर्वक कर्म करनेका या कर्मफल भोगनेका अनुभव रूप अज्ञान चेतना नहीं है। ज्ञानचेतनामें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र तीनों गर्भित हैं, यही मोक्षमार्ग है। यह ज्ञानचेतना सम्यग्दृष्टीके चौथे अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थानसे प्रारंभ होजाती है। फिर बढ़ती जाती है। तेरहवें सयोगकेवली जिन गुणस्थानमें शुद्ध विशद स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञानचेतना प्रकाशमान होजाती है। ज्ञान चेतनाके ही द्वारा शुद्ध चेतनाका उदय होता है। जैसे दोयजका चन्द्रमा स्वयं पूर्णमासीका चन्द्रमा हो जाता है। स्वानुभव ही मार्ग है, स्वानुभव ही ध्येय है। जितना२ स्वानुभव बढ़ता जाता है कर्मोंका निरोध होता है और पुरातन कर्मोंकी निर्जरा होती है। स्वानुभवरूपी प्रथम व द्वितीय शुक्लध्यानसे या भाव श्रुतज्ञानके प्रतापसे चार घातीय कर्मोंका क्षय होता है। और अरहन्तपद प्रगट होता है। सयोग गुणस्थानमें योगोंकी प्रवृत्तिसे कर्मोंका ईर्यापथ आस्रव होता है। वह भी स्वानुभवके प्रतापसे जब बन्द होजाता है, तब चौदहवें गुणस्थानमें पञ्च लघु अक्षर उच्चारण मात्र काल ठहरनेसे चार अघातीय कर्म भी क्षय होजाते हैं और यह आत्मा शुद्ध सिद्ध अपने मूल द्रव्य स्वभावमें होजाता है तब मुक्त कहलाता है। इस गाथाका यही तात्पर्य है कि जो आस्रवका निरोध करना चाहे, आस्रवरूपी चोरोंका प्रवेश न होने देना चाहे उसे मन, वचन, काय तीनों गुप्तिके दुर्गमें बैठकर परमानन्दके साथ स्वात्म मूर्तिमें रमण करना चाहिये। यही साधन है। जहां अमृतका स्वाद हो वही स्वाद अमर करनेवाला है।

तत्वसारमें श्री देवसेनाचार्य कहते हैं—

जो अप्पा त णाणं जं णाणं तं च दंसण चरणं। सा सुद्धचेयणावि य णिच्छयणयमस्सिए जीवे ॥ ५७ ॥

सयलवियप्पे थक्के उप्पज्जइ कोवि सासओ भावो। जो अप्पणो सहावो मोक्खस्स य कारणं सो हु ॥ ६१ ॥

णिहए राए सेण्णं णासइ सयमेव गलियमाहप्प। तह णिहयमोहराए गलंति णिस्सेसघाईणि ॥ ६९ ॥

तिहुअणपुज्जो होउं खविओ सेसाणि कम्मजालाणि। जायइ अभूदपुव्वो लोयग्गणिवासिओ सिद्धो ॥ ६७ ॥

भावार्थ—जब आत्मा शुद्ध निश्चयनयका आश्रय लेता है, तब जो अपना आत्मा है वही ज्ञान है। ज्ञान है। वही सम्यग्दर्शन है, वही चारित्र है, वही शुद्ध ज्ञान चेतना है। सर्व मनके विचार बन्द होजाने-

पर कोई शाश्वता आत्माका स्वभाव प्रगट होता है। यही स्वभावका अनुभव ही मोक्षका कारण है। इसीसे पहले मोह कर्मका क्षय होता है। फिर जैसे राजाके मरनेपर राजाकी सेना प्रभाव रहित हो स्वयं भाग जाती है, वैसे मोह रागके क्षय होनेपर शेष तीन घातीय कर्म भी क्षय होजाते हैं, तब तीन लोक पूज्य अरहन्त होजाता है। फिर अघाति कर्मजालको भी क्षय करके अभूतपूर्व सिद्ध हो जाता है और लोकाग्र निवास करता है। पञ्चाध्यायी द्वितीय भागमें ज्ञानचेतनाका स्वरूप बताया है—

अत्रात्मा ज्ञानशब्देन वाच्यस्तन्मात्रतः स्वय। सा चेत्यतेऽनया शुद्ध शुद्धा सा ज्ञानचेतना ॥ १९६ ॥
अर्थाज्ज्ञानं गुण· सम्यक् प्राप्तावस्थान्तरं यदा। आत्मोपलब्धिरूप स्यादुच्यते ज्ञानचेतना ॥ १९७ ॥
सा ज्ञानचेतना नूनमस्ति सम्यग्दृगात्मनाम्। न स्यान्मिथ्यादृशः क्वापि तदात्वे तदसंभवात् ॥ १९८ ॥

भावार्थ—इस ज्ञान चेतना शब्दमें ज्ञान शब्दसे शुद्ध आत्मा कहा जाता है, क्योंकि वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है। वह शुद्ध आत्मा जिस चेतनाके द्वारा अनुभव किया जाता है उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। अर्थात् जिस समय ज्ञान, गुण मिथ्यात्व रूपसे बदल कर सम्यग्दर्शन सहित होजाता है तब आत्माकी प्राप्ति होजाती है। आत्मानुभूति होजाती है, यही ज्ञानचेतना है। यह ज्ञानचेतना नियमसे सम्यग्दृष्टीके ही होती है, मिथ्यादृष्टीके नहीं होती है, क्योंकि मिथ्यात्वके उदयमें आत्मानुभूतिका होना संभव नहीं है।

(७) मति, श्रुत, अवधि—ये तीन भाव।

मति कमलासनं कंठे, जिन उक्तं स्वात्मचिंतनं।
ॐ वंकारं च विंदंते, शुद्ध मति सास्वतं ध्रुवं ॥ ५२ ॥
सुतस्य हृदये चिंते, अचष्यदर्शन दिष्टितं।
ॐ वंकारं ह्रियकारं च, सार्धं न्यानमयं ध्रुवं ॥ ५३ ॥
मति सुतं च उत्पाद्यन्ते, अवध्यं चारित्र संजुतं।
षट् कमल त्रि ॐ वंकारं, उदयं अवधि न्यानयं ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थ—(कंठे मति कमलासनं) कंठमें बुद्धिपूर्वक कमलकी रचना करके, (ॐ वंकारं च विंदते) ॐ मन्त्रको स्थापन करके उसके द्वारा स्वरूपका अनुभव करे (जिन उक्तं स्वात्मचितनं) इस तरह जिनेन्द्रके कथनके अनुरूप स्वात्मानुभव प्राप्त करे (सुद्ध सास्वतं धुवं मति) यही शुद्ध, अविनाशी, निश्चल मतिज्ञान है। (सुतस्य हृदये ॐ वंकार ह्रियकारं च धुवं न्यानमय सार्धं चिंते) श्रुतज्ञान यह है कि हृदयमें ॐ ह्रीं मन्त्रको स्थापनकर उसके द्वारा ज्ञानमई ध्रुव आत्माका चिंतवन करे (अचप्य दर्सन दिष्टिवं) यह अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव है (ष कमलं त्रि ॐ वंकारं) छः कमल विराजमान करके तीनपर ॐ स्थापन करे (मति सुत च अवध्यं चारित्र संजुत्तं उत्पाद्यते) तब उनके द्वारा मति व श्रुत निश्चल चारित्र सहित प्रगट होते हैं (अवधि न्यानयं उदयं) यही अवधिज्ञानका उदय है।

भावार्थ—यहां आस्रवके निरोधक मति, श्रुत, अवधिज्ञानको अध्यात्मदृष्टिसे बताया है। तीनोंको स्वात्मानुभव ही दिखलाया है।

मतिज्ञान-कण्ठमें एक कमल चिंतवन करे, उस कमलके मध्यमें ॐ मन्त्रको चमकता हुआ विराजमान करे। व उसके द्वारा शुद्धात्माके स्वरूपकी भावना भावे। स्वात्मानुभवका प्रकाश होना सम्यग्दर्शन सहित यथार्थ मतिज्ञान है। यहां मति नाम मननके लिये है।

श्रुतज्ञान—हृदय कमलमें ॐ ह्रीं मन्त्रको स्थापन करके उसके द्वारा ज्ञानमई शुद्धात्माकी भावना भावे। जिससे अतीन्द्रिय आत्मामें स्थिरता होजावे, स्वसंवेदन होजावे, यही श्रुतज्ञान है। द्वादशांग श्रुतज्ञानका भाव यही है जो शुद्धात्माका अनुभव होजावे। श्रुतके अर्थ अनुभव किये हुए ज्ञानके हैं।

अवधिज्ञान—छः कमल विराजमान करे; मस्तक, नासिकाका अग्रभाग, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि। इनमेंसे पहले तीनपर ॐ नीचे तीनपर ह्रीं स्थापन करे, तब इनके द्वारा शुद्धात्माका चिन्तवन करते हुए जब निश्चलता अपने आत्माके स्वरूपमें होजावे तब अवधिज्ञानका प्रकाश हुआ। अवधिके अर्थ निश्चल ध्यानके भी हैं। यहां तीनों सम्यग्ज्ञानोंका तात्पर्य यही लिया है जो इनके द्वारा शुद्धात्माका मनन हो व स्वानुभवका प्रकाश हो। स्वानुभव ही केवलज्ञानका कारण है। मोक्षमार्गमें पर पदार्थके ध्यानकी आवश्यक्ता नहीं है। निज आत्मीक पदार्थ हीका ध्यान वीतरागता सहित आत्मानन्दको उत्पन्न करता है।

तत्वानुशासनमें भी मन्त्रके द्वारा आत्माका चिंतवन बताया है।

हृत्पंकजे चतुःपत्रे ज्योतिष्मंति प्रदक्षिण । असिआउसाक्षराणि ध्येयानि परमेष्ठिनां ॥ १०२ ॥

भावार्थ—हृदयमें चार पत्तोंके कमलमें बीचमें अ, चार पत्तोंपर सि आ उ सा विराजमान करके एक एक अक्षरके द्वारा क्रमसे पांच परमेष्ठियोंका ध्यान करे।

ध्यायेदइउएओ च तद्वन्मंत्रानुदर्चिषः । मत्यादिज्ञाननामानि मत्यादिज्ञानसिद्धये ॥ १०३ ॥

भावार्थ—उसी हृदय कमलके भीतर मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल इन पांच ज्ञानोंके वाचक अ, इ, उ, ए, ओ, इन पांच मन्त्रोंको विराजमान करे व पांचों ज्ञानोंको पांचों ज्ञानकी सिद्धिके लिये ध्यावे।

सप्ताक्षर महामत्रं मुखरध्रेषु सप्तसु । गुरुपदेशतो ध्यायेदिच्छन् दूरश्रवादिकं ॥ १०४ ॥

भावार्थ—सात अक्षरी मंत्रको मानके सात छिद्रोंमें स्थापन कर गुरुके उपदेशमें ध्यावे। इससे दूरसे देखने, सुनने, सूंघने, आदिकी शक्ति बढ़ जाती है। मुखका छिद्र एक, नाकके दो, आंखके दो, कानके दो ऐसे सात छिद्रोंमें सात अक्षरी मंत्र स्थापन करे।

सात अक्षरी मंत्र है—णमो अरहन्ताणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, या ॐ ह्रीं असि आ उ सा है।

दिघासु स्वं पर ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थिर्ति । विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु ॥ १४३ ॥

पूर्वं श्रुतेन सस्कारं स्वात्मन्यारोपयेत्ततः । तत्रैकाग्रं समासाद्य न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ १४४ ॥

भावार्थ—ध्यान करनेवालेको उचित है कि पहले अपने आत्माके व परद्रव्यके स्वरूपको यथार्थ जैसाका तैसा जाने व श्रद्धान करे। फिर परद्रव्यको अप्रयोजनभूत जानके छोड़दे। अपनेमें ही अपनेको स्थापित करे। पहले शास्त्रके अभ्याससे अपने स्वरूपका भाव अपनेमें स्थापित करे। फिर जब एकाग्र हो जावे तब कुछ चिन्तवन न करे।

(८) मनःपर्यय, केवल, स्वरूप–ये तीन भाव।

मतिसुत अवधिं चिंते, रिजु विपुलं च जानतं।
स्वात्मदर्सनं न्यानं, सुद्ध चरन मनपर्ययं ॥ ५५ ॥
चतुर्न्यान च एकत्वं, केवलं परमं धुवं।
अनन्तानन्त दिष्टितं, सुद्धं सम्यग्दर्सनं ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ—(मति सुत अवधिं चिंते) ऊपर कहे प्रमाण अध्यात्मदृष्टिसे मति, श्रुत व अवधिज्ञानका चिंतवन करे (रिजु विपुलं च जानत) अपने आत्माको परम सरल स्वभावी तथा विपुल विशाल अनन्तानन्त ज्ञानकी शक्तिका धारक जाने (स्वात्म दर्सन न्यानं चरन) जब अपने ही आत्माका श्रद्धान व ज्ञान व आचरण हो, ऐसा स्वात्मानुभव हो, वही मनःपर्ययज्ञान है। अर्थात् मनसे अतीत आत्माका ज्ञान है। पर्ययके अर्थ अतीत व उल्लँघनके है (चतुर्न्यानं च एकत्वं) जब स्वात्मानुभवरूप शुक्लध्यान होता है तब चारों ही ज्ञानकी एकता है। इसके द्वारा (केवल परमं धुव) केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है। जो उत्कृष्ट है व अविनाशी निश्चल है (अनंतानत दिष्टितं) इस केवल ज्ञानमें अनन्तानन्त पदार्थ एकदमसे झलकते हैं (सुद्धं सम्यग्दर्शनं) तब ही शुद्ध प्रत्यक्ष परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन होता है जो आत्माका स्वरूप है।

भावार्थ—आत्मा स्वभावसे ऋजु है, सरल है, आर्जवगुण सहित है तथा विपुल है, विशाल है, गम्भीर है, अनन्तानन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य सुखादि शक्तिका धारी है। सब द्रव्योंमें महान है। पांच द्रव्य मात्र ज्ञेय हैं। यह ज्ञेय भी है, ज्ञाता भी है। यह ऐसा गंभीर है कि इसकी याद मन व इन्द्रियोंको नहीं होसक्ती है। मनःपर्ययके अर्थ हैं मनसे अतीत। जहां मनसे अतीत आत्माही द्वारा सरल-व सहज स्वभावी विशाल आत्माका अनुभव है वही यथार्थ मनःपर्ययज्ञान है। जहां रत्नत्रयकी एकतारूप निर्विकल्प ध्यान होता है वह वचन अगोचर स्वसंवेदन प्रत्यक्ष एक ऐसा मोक्ष साधकभाव है जो केवलज्ञानका साधक है व जिसमें मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, ज्ञान समा गए हैं। ऐसा ज्ञान आस्रवका निरोधक है। स्वानुभवसे प्राप्त केवलज्ञान भी आस्रव निरोधक है, क्योंकि वहां सर्व विश्वको जानते हुए भी वीतरागता है।

केवलज्ञानके होनेपर सम्यग्दर्शन, शुद्ध व परमावगाढ़ होजाता है, क्योंकि वहां प्रत्यक्ष अमूर्तीक आत्माका दर्शन है, यह स्वस्वरूपमई सम्यक्त भी आस्रव निरोधक है। समयसारमें कहा है:—

अप्पाणमप्पणो रुंभिदूण दोसु पुण्णपावजोगेसु। दंसणणाणम्हिठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥ १७७ ॥

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा। णवि कम्मं णो कम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १७८ ॥

भावार्थ—जो कोई ज्ञानी अपनेको पुण्य व पाप दोनों प्रकारके भावोंसे रोककर अपने दर्शनज्ञान स्वभावमें स्थिर होता है, दूसरे पदार्थोंकी इच्छासे विरक्त रहता है और सर्व प्रकारके ममत्वको छोड़कर अपनेसे ही अपने शुद्ध आत्माको ध्याता है, कर्म व शरीरादिको नहीं ध्याता है, वही एक अपने स्वभावका अनुभव करता है। शिवकोटि आचार्य भगवती आराधनामें कहते हैं:—

झाणं कसायवाधे गब्भघर मारुए व गब्भहरं। झाण कसाय उण्हे छाही छाही व उण्हम्हि ॥ १६९६ ॥

भावार्थ—जैसे प्रबल पवनकी बाधा मेटनेको अनेक घरोंके मध्यमें गर्भगृह समर्थ है वैसे कषायरूपी पवनकी बाधा मेटनेको आत्मध्यानरूपी गर्भगृह समर्थ है। जैसे गर्मीके आतापमें छाया शांतिकारी है, वैसे ही कषायकी आताप मेटनेको आत्मध्यानकी छाया हितकारी है।

---

(९) आज्ञा, वेदक, उपशम सम्यक्त-ये तीन भाव।
(१०) क्षायिक, शुद्ध, ध्रुव, सम्यक्त-ये तीन भाव।

स्वरूपं सुद्ध द्रव्यार्थं, आन्या वेदक उवसमं।
ष्यायिक सुद्ध धुवं चिंते, कर्मादि मल मुक्तये ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थ—(स्वरूपं सुद्ध द्रव्यार्थं) आत्माका स्वभाव शुद्धरूप है ऐसा निश्चय होना (आन्या वेदक उपसम) आज्ञा, वेदक, उपशम, सम्यक्त है तथा यही (ष्यायिक सुद्ध धुव) क्षायिक, शुद्ध, ध्रुव, सम्यक्त है (कर्मादि मल मुक्तये चिंते) कर्मादि मैलके छुड़ानेके लिये इनका चिंतवन करना योग्य है।

भावार्थ—मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र स्वरूप है। उनमें सम्यग्दर्शन प्रधान है। जबतक सम्यग्दर्शन गुण प्रगट नहीं होता है तबतक जितना भी ज्ञान है वह कुज्ञान है व जितना भी

चारित्र है वह कुचारित्र है। सम्यग्दर्शन एक ऐसा आत्माका गुण है जो केवल अनुभवगम्य है। स्वानुभूतिके साथ इसका अविनाभाव सम्बन्ध है। अपने आत्माके आनन्दका स्वाद विना सम्यक्तके नहीं आसक्ता है। अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वकर्म इन पांच प्रकृतियोंके उदयमें इसका प्रकाश नहीं होता है। इन पांचों प्रकृतियोंके अन्धकारको दूर करनेके लिये पांच लब्धियोंकी आवश्यक्ता है।

(१) क्षयोपशम लब्धि—कर्मोंका ऐसा क्षयोपशम हो कि सैनी पंचेन्द्रिय होकर बुद्धि प्रबल हो समझने योग्य हो व पाप कर्मोंका उदय समय समय कम होता जाय। अर्थात् जिसको असाता घटती रूप हो बढ़ती न हो, कारण जो घोर दुःखोंसे आकुलित है वह स्वपर तत्वका विचार नहीं कर सक्ता है।

(२) विशुद्धिलब्धि–सुशिक्षा व सत्संगतिके प्रतापसे परिणामोंमें इतनी उज्वलता होगई हो कि कामोंसे कुछ अरुचि हो, योग्य लाभकारी कामोंमें रुचि हो। जैसे धन होनेपर परोपकारमें लगानेके भाव हो, बूरे कर्मोंसे बचानेके भाव हो। जब कषायका अनुभाग तीव्र नहीं हो तब विशुद्धि लब्धि कहनी चाहिये, हितकी तरफ मन प्रेरित हो।

(३) देशना लब्धि—जिनवाणीके पढ़ने, सुनने, विचारने, धारणामें लेनेकी व मनन करनेकी गाढ़ रुचि होना, यह लब्धि परमोपकारिणी है। इसके होते हुए भव्यजीव देव शास्त्र गुरुका व जीवादि सात तत्वोंका व स्वपरका स्वरूप ठीक २ समझता है। परिणामोंमें स्वाध्यायके प्रतापसे ऐसी उज्वलता होती है कि आयु कर्मके सिवाय शेष कर्मोंकी स्थिति घटकर अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर मात्र रह जाती है।

(४) प्रायोग्य लब्धि—यह लब्धि अन्तर्मुहूर्तके लिये होती है, परिणाम उज्वल होते हैं। इस समय पाप कर्मोंका अनुभाग कम होने लगता है तथा नया बन्धन आयु कर्मके सिवाय सात कर्मोंकी अनंत कोड़ाकोड़ी मात्र स्थितिसे भी कम होता जाता है। ३४ दफे बन्धका अपसरण होता है। हरएक दफे स्थिति ७०० व ८०० सागर कम होती जाती है। ३४ बन्धापसरणोंसे ४६ कर्म प्रकृतियोंका बन्ध छूट जाता है, विशेषके लिये लब्धिसार देखो।

(५) करणलब्धि—भेदविज्ञानके द्वारा अभ्यास करते हुए ही देशनालब्धिकी पूर्णता होकर प्रायोग्य लब्धि फिर करणलब्धि होती है जिसमें परिणाम समय समय अनन्तगुणे विशुद्ध होते जाते हैं। एक अन्तर्मुहूर्तमें तीन करणलब्धिमें अधोकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण होजाती हैं। आत्मा व परमा-

त्माका भेद विचारते हुए परिणाम ऐसे निर्मल होजाते हैं कि उनके प्रतापसे अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वकी प्रकृतियां एक अन्तर्मुहूर्तके लिये उपशम होजाती है, तब उपशम सम्यक्त पैदा होजाता है, तब मिथ्यात्व कर्मका पुद्गल द्रव्य जो सत्तामें था, उसके तीन भाग होजाते हैं—सम्यक्त प्रकृति, मिश्र, मिथ्यात्व। अन्तर्मुहूर्तके पीछे जिसके सम्यक्त प्रकृतिका उदय आजाता है वह वेदक या क्षयोपशम सम्यक्ती होजाता है। इस सम्यक्तमें सम्यक्त प्रकृतिको अनुभव करते हुए सम्यग्दर्शनसे छूटता नहीं है। किन्तु उसमें कभी २ अतीचार लगता है। जब कभी चार अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके अर्थात अन्य अप्रत्याख्यानादि कषाय क्षय करके व तीनों दर्शन मोहनीयका क्रमसे क्षयकर देता है तब क्षायिक सम्यक्त होता है। यह सम्यक्त कभी छूटता नहीं है व शीघ्र ही मोक्षमें पहुँचा देता है। यहां सम्यक्तके छः भेद नीचे प्रकार बताए हैं—

(१) आज्ञा सम्यक्त—जिनवाणीकी आज्ञानुसार आत्मा व अनात्माके तत्वोंपर निश्चय होजाना, इसको व्यवहार सम्यक्त भी कह सकते हैं। इसका स्वरूप आत्मानुशासनमें गुणभद्राचार्य कहते हैं—

आज्ञा सम्यक्तत्वमुक्तं यदुत विरुचित वीतरागाज्ञयैव। त्यक्तग्रंथप्रपंचं शिवममृतपथ श्रद्दधन्मोहशातेः ॥ १२ ॥

भावार्थ—जहां वीतराग भगवानकी आज्ञासे तत्वोंका विचार करते हुए ऐसा श्रद्धान होजावे कि मोक्षका मार्ग परिग्रहसे रहित वीतरागभावमई व आनन्दमई है। जब मिथ्यात्व कर्म शांत होने लगता है तब ऐसा भाव होता है, इस सम्यक्तके पीछे ही।

(२) उपशम सम्यक्त—होता है। जब पांच या सादि मिथ्यात्वीके पांच या सात प्रकृतियोंका उपशम होता है फिर—

(३) वेदक सम्यक्त होता है जब सातों प्रकृतियोंमेंसे एक सम्यक्त मोहनीयका उदय होता है फिर—

(४) क्षायिक सम्यक्त होता है जब सातोंका क्षय होजाता है।

(५) शुद्ध सम्यक्त—सराग सम्यक्तको अशुद्ध कहते हैं, वीतराग सम्यक्तको शुद्ध कहते हैं। साधुके जब संज्वलन कषायका इतना मन्द उदय होता है कि सिवाय शुद्धात्माके और तरफ बुद्धिपूर्वक उपयोग नहीं जाता है, दूसरे आहार विहारकी चिन्ता नहीं उठती है तब वीतराग सम्यक्त कहलाता है। प्रमत्त गुणस्थान तक तो सराग सम्यक्त होता है।

(६) ध्रुव सम्यक्त—परमावगाढ सम्यक्त जो केवली भगवानके होता है। केवलज्ञानके पहले आत्माका श्रद्धान शास्त्रके आधारसे श्रुतज्ञानके बलसे या केवलज्ञानीको प्रत्यक्ष अमूर्तीक आत्माका साक्षात्कार होजाता है इसलिये यह ध्रुव या निश्चल सामायिक सम्यक्त है।

सम्यक्त एक ही गुण है। भिन्न२ अपेक्षासे उसके छः नाम कहे गये हैं। सम्यक्तीका गाढ़ भाव अपने शुद्धात्माके लाभपर होजाता है। उसको संसारके प्रपंचकी अरुचि होजाती है। सम्यक्तके आठ अंग प्रगट होजाते हैं।

(१) निःशङ्कित अंग—तत्वमें शंका न होना व धर्म साधन करते हुए भय न रखना। मरण, रोग, आदिसे भयभीत न होना, वीरभाव रखना।

(२) निःकांक्षित अंग—संसारके सुखको त्यागनेयोग्य व दुःखका कारण समझना।

(३) निर्विचिकित्सित अंग—रोगी, दुःखी प्राणियोंको देखकर ग्लानि न करके दयाभाव करना।

(४) अमूढ़दृष्टि अंग—मूढ़तासे देखादेखी अधर्मको धर्म न मान बैठना।

(५) उपगूहन अंग—अपने दोषोंको निकालनेकी व परनिंदा न करनेकी रुचि रखना।

(६) स्थितिकरण—अपनेको व दूसरोंको धर्ममें स्थिर करना।

(७) वात्सल्यांग—धर्मात्माओंसे प्रेम रखना, उनके काम आना।

(८) प्रभावनांग—धर्मकी महिमा फैलाकर धर्मोन्नति करना। सम्यक्तीके आठ अंग व लक्षण भी प्रगट होते हैं।

(१) संवेग—धर्म व धर्मके फलमें अनुराग, (२) निर्वेद—संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य, (३) निंदा—अपने दोषोंको दूसरोंके सामने कहना, (४) गर्हा—अपने मनमें अपनी निंदा करते रहना, (५) उपशम—परिणामोंको शांत रखना, (६) भक्ति—देव, शास्त्र गुरुमें भक्ति रखना, (७) वात्सल्य—धर्मात्माओंसे प्रेम, (८) अनुकंपा—जीव मात्रपर करुणाभाव।

आत्माके शुद्ध स्वभावका गाढ़ श्रद्धान होजाना सम्यक्त है।

पञ्चाध्यायीमें कहा है—

इत्येवं ज्ञाततत्त्वोऽसौ सम्यग्दृष्टिर्निजात्मदृक्। वैषयिके सुखे ज्ञाने रागद्वेषौ परित्यजेत् ॥ ३७१ ॥

भावार्थ—तत्वोंको भलेप्रकार जाननेवाला व अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टी जीव इंद्रियोंके भोगोंसे प्राप्त सुखमें व इंद्रियजन्य ज्ञानमें राग द्वेष नहीं करता है, समभाव रखता है, अतीन्द्रिय ज्ञान व अतीन्द्रि आनन्दका ही प्रेमी होजाता है।

सम्यक्त्वं वस्तुतः सूक्ष्म केवलज्ञानगोचरम्। गोचर स्वावधिस्वान्तपर्ययज्ञानयोर्द्वयोः ॥ ३७१ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन गुण परम सूक्ष्म है, केवल ज्ञानगोचर है। अथवा पुद्गलकी सहायतासे सुअवधि व मनःपर्यय ज्ञानी भी जान सक्ता है। परन्तु परमावधि व सर्वावधि वाला साधु जान सक्ता है देशावधिधारी नहीं।

तत्राप्यात्मानुभूतिः सा विशिष्टं ज्ञानमात्मनः। सम्यक्त्वेनाविनाभूतमन्वयाद्व्यतिरेकतः ॥ ४०२ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके होनेहीपर अपने आत्माका अनुभव रूप विशेष आत्माका ज्ञान होता है। सम्यक्तके होनेपर ही आत्मानुभूति होती है, नहीं होनेपर नहीं होती है।

धर्मः सम्यक्त्वमात्रात्मा शुद्धस्वानुभवोऽथवा। तत्फलं सुखमत्यक्षमक्षय क्षायिकं च यत् ॥ ४१२ ॥

भावार्थ—सम्यक्तीको यह श्रद्धा रहती है कि सम्यग्दर्शन ही सच्चा धर्म है या शुद्धात्माका अनुभव सच्चा धर्म है। उस धर्मका फल घातिया कर्मोंके नाशसे होनेवाला क्षायिक अतीद्रिंय अनंत सुखका लाभ है।

(१०) पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ–ये तीन भाव।

(११) रूपातीत, सुधर्म, अवकाश–ये तीन भाव।

पदस्थं सुद्ध पद सार्धं, सुद्ध तत्तु प्रकासकं।
पिंडस्थं न्यान पिंडस्य, स्वात्मचिंता सदा बुधैः ॥ ५८ ॥

रूपस्थं सार्वं चिद्रूपं, रुपातीत विगतरूपयं ।
स्वस्वरूपं च आराध्यं, धर्मचक्रं न्यानरूपयं ॥ ५९ ॥
धर्मध्यानं च संयुक्तं, औकास दान समर्थयं ।
आत्मापायविचय धर्म, सुक्कध्यानं स्वातमदर्सनं ॥ ६० ॥

अन्वयार्थ—(पदस्थ सुद्ध पद सार्धं, सुद्ध तत्तु प्रकासकं) जहां शुद्धपदको स्थापन करके या शुद्ध पदके द्वारा शुद्ध आत्मीक तत्वका प्रकाश हो वह पदस्थ ध्यान है (पिंडस्थं न्यान पिंडस्थ, स्वातमचित्या सदा वुधः) जहां शरीरमें विराजित ज्ञान शरीरी आत्माको लक्ष्य करके अपने ही आत्माकी चिंता हो ऐसा पिंडस्थ ध्यान सदा बुद्धिमानोंको करना योग्य है (रूपस्थ सार्व चिद्रूपं) जहां सर्व हितकारी अरहन्तका चैतन्य स्वरूपका ध्यान हो वह रूपस्थ ध्यान है (विगत रूपयं रूपातीत) जहां अरूपी सिद्धका ध्यान हो वह रूपातीत ध्यान है (धर्मचक्र न्यान रूपयं स्वस्वरूपं च आराध्यं) धर्मका समूह ज्ञानस्वभावी अपने आत्माका स्वरूप इन चारों प्रकारके ध्यानोंसे आराधना योग्य है (आत्मापायविचय धर्म धर्मध्यान च सयुक्त) आज्ञाविचय, अपाक विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय ऐसा चार प्रकार धर्मध्यान विचारना योग्य है (औकास दान समर्थयं सुक्कध्यानं स्वातम दर्सनं) सर्व द्रव्योंको जाननेके समर्थ केवलज्ञानका कारण व केवलज्ञानरूप शुक्लध्यान है, वहां भी अपने आत्माका दर्शन है ।

भावार्थ—आत्मध्यानकी अग्निसे ही कर्मोंको भस्म किया जाता है । यहां तीन गाथाओंमें सर्व उपयोगी ध्यानोंको बता दिया है । पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत चार प्रकार ध्यानका स्वरूप नीचे प्रकार जानना योग्य है ।

(२) पदस्थ ध्यान—श्री पद्मसिंह मुनि ज्ञानसारमें कहते हैं—

एय च पंच सत्तय पणतीसा जहकमेण सियवण्णा । झायह पयत्थ झाणं उवइट्ठं जोयजुत्तेहिं ॥ २१ ॥

भावार्थ—योगाभ्यासके बलसे पदस्थ ध्यानमें श्वेतवर्णके अक्षरोंको विराजमान करके ध्यावे । इन पदोंको नाभि, हृदय, कण्ठ, मुख, नासिका अग्रभाग, भृकुटीके मध्य, मस्तक, सिर इन सातमेंसे किसी स्थानपर कमल बनाकर उसपर स्थापन करके ध्यावे । मंत्र कई प्रकारके प्रसिद्ध हैं ।

३२ अक्षरी–णमोकार मंत्र।

१६ अक्षरी—अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

७ ,, णमो अरहंताणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं।

६ ,, अरहन्त सिद्ध, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः।

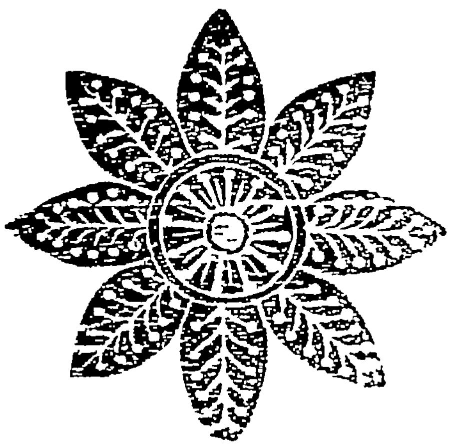
५ ,, अ सि आ उसा–ॐ नमः सिद्धं।

४ ,, अरहन्त।

२ ,, सिद्ध, सोहं, ॐ ह्रीं, अर्हं।

१ ,, ॐ, ह्रँ, अ।

हृदयस्थानमें एक कमल आठ पत्तोंका विचारे, हरएक पत्तेपर छः एक तरफ, छः दूसरी तरफ ऐसे १२ बिन्दु विचारे। बीचमें कर्णिकाके घेरेमें १२ बिंदु विचारे। एक एक पत्तेको क्रमसे लेकर एक एक बिंदु पर एक एक मंत्रको पूरा पढ़कर जपे व अर्थको विचारे। उसका नकशा इसप्रकार होगा—



एक कमल हृदयमें विचारे। उसके आठ पत्तोंपर क्रमसे णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः, ऐसे आठ पद लिखे। विचार कर ध्यावे। चन्द्रमाके समान चमकते हुए ॐको या ह्रँको नासिका अग्रभाग या मस्तक या हृदयमें स्थापित कर या अन्यत्र रखकर ध्यावे। यह सब पदस्थ ध्यान है। विशेष स्वरूप श्री ज्ञानार्णवमें जानना योग्य है।

(२) पिंडस्थ ध्यान–शरीरमें विराजित अपने शुद्ध आत्माका ध्यान सो पिंडस्थ ध्यान है। इसकी पांच धारणाओंका विचार क्रम क्रमसे करना चाहिये।

पृथ्वी धारणा—मध्यलोकको क्षीरसमुद्र विचारे, उसके मध्यमें जम्बूद्वीप प्रमाण एक लाख योजनका चौडा एक हजार पत्तोंका कमल ताए सोनेके रंगका विचारे। बीचमें कर्णिकाके स्थानपर सुमेरु पर्वतको

सुवण रंगका विचारे। पर्वतके ऊपर पांडुकवनको विचारे। पांडुकवनमें पांडुकशिला अर्द्धचन्द्राकार है। उस पर स्फटिकमणिका सिंहासन है। उसके ऊपर पद्मासन बैठा हुआ अपनेको विचारे कि मैं कर्मोंको विध्वंश करनेके लिये बैठा हूं। इतना बारवार विचारना पृथ्वी धारणा है।

अग्नि धारणा—उसी सिंहासनपर बैठे हुए ऐसा विचारे कि मेरी नाभिके स्थानपर भीतर ऊपरको उठा हुआ-एक श्वेतवर्णका सोलह पत्तोंका कमल है, उनपर १६ अक्षर पीले रंगके चमकके हुए विचारे। वे १६ स्वर हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। व उस कमलके मध्यमें र्हं अक्षर विचारे। इस कमलके ठीक ऊपर सीधमें हृदयस्थानपर एक औंधा नीचा मुख कमल आठ पत्तोंका विचारे। उन पत्तोंको ज्ञानावरणादि आठ कर्म समझे। फिर विचारे कि नीचेके कमलके मध्य र्हं की रेफसे धुंआं निकला फिर अग्निज्वाला निकली और वह बढ़कर आठ कर्मरूपी कमलको जलाने लगी। आगकी लौ आठ कर्मरूपी कमलके मध्यसे ऊँची होकर मस्तकपर आई। फिर एक ज्वाला शरीरके एक तरफ, एक दूसरी तरफ गई, नीचे जाकर मिल गई, शरीरके चारों ओर त्रिकोण बन गया। इस त्रिकोणकी तीनों रेखाओंमें र् र् र् र् अक्षर अग्निमय विचारे। इस त्रिकोणके बाहरी तीन कोनोंपर अग्निमय स्वस्तिक लिखे व भीतरी तीनों कोनोंपर ॐ र्हं अग्निमय लिखे। इस अग्निमण्डलको बनाकर फिर यह ध्यान करे कि भीतरी अग्निमण्डल कर्मोंके कमलको व बाहरी अग्निमण्डल शरीरको जला रहा है। जलते२ राख बन रही है। इसतरह कर्म व शरीर जलकर रज होगए व अग्नि र्हं के रेफसे उठी थी उसीमें समा गई। ऐसा बारबार ध्यान करे सो अग्निधारणा है।

(३) वायु धारणा—तीव्र चलती हुई पवनको विचारे। पवनका बीजाक्षर स्वाय स्वाय चारों तरफ गोल पवन मण्डलके लिखा हुआ है। यह गोल मण्डल घूम घूम करके कर्म व शरीरकी रजको उड़ा रहा है, आत्मा स्वच्छ होरहा है ऐसा चिंतवन करे।

(४) जल धारणा—काले२ मेघ छागये, विजली कड़कने लगी, पानी बरसने लगा, अर्धचन्द्रके आकार जल मण्डल उनके ऊपर बन गया। अपनी आत्मापर पानी बहता हुआ व कर्म नोकर्मकी रजको धोता हुआ विचारे कि आत्मा बिलकुल साफ होरहा है।

(५) तत्वरूपवती धारणा—अब विचारे कि मेरा आत्मा बिलकुल शुद्ध है। सर्व पुद्गलसे रहित

है, स्फटिकमणि तुल्य है, यही सिद्ध है, ऐसा शुद्धात्माका ध्यान करे सो तत्वरूपवती धारणा है।

ज्ञानसारमें कहा है—

णियणाहिकमलमज्झे, परिट्ठियं विप्फुरतरवितेय। झाएह अरुहरूप झाणं तं मुणह पिंडत्थं ॥ १९ ॥

भावार्थ—अपने नाभिके मध्य कमलमें विराजित सूर्यके समान तेजरूप मंत्रके द्वारा अरहन्तको ध्यावे सो पिंडस्थ ध्यान है। यह अग्नि धारणाकी अपेक्षासे कहा है।

(३) रूपस्थ ध्यान—समवसरणमें स्थित आठ प्रातिहार्य सहित अरहन्त भगवानके स्वरूपको ध्यावे, अरहन्तके द्वारा अपने आत्माको ध्यावे।

ज्ञानसारमें कहा है—

घणघायिकम्ममहणो अइसुइवरपाडिहेरसंयुत्तो। झाएह धवल वण्णो अरहन्तो समवसरणत्थो ॥ २८ ॥

भावार्थ—समवसरणमें स्थित अतिशय व प्रातिहार्य सहित व चार घातीय कर्म रहित श्वेत वर्ण अरहन्तके ध्यानाकार स्वरूपका ध्यान करे।

(४) रूपातीत ध्यान—एकदमसे सिद्धका स्वरूप ध्यावे कि वे चैतन्य स्वरूपी, पुरुषाकार, शुद्ध, ज्ञानानन्दमई आत्मा है। सिद्धके स्वरूपको अपने आत्मामें आरोपण करके ध्यावे।

ज्ञानसारमें कहा है—

जरमरणजम्मरहिओ, कम्मविहीणो विमुक्कवावारो। चउगइगमणागमणो णिरंजणो णिरुवमो सिद्धो ॥ ३१ ॥

भावार्थ—वे सिद्ध भगवान जन्म, जरा, मरणसे रहित हैं, आठ कर्म रहित हैं, क्रिया रहित हैं, चार गतिमें गमनागमन रहित हैं, रागादि मैल रहित हैं, अनुपम हैं।

धर्मध्यानके चार भेद हैं उनको भी ध्यावे।

(१) आज्ञाविचय—जिनेन्द्रकी आज्ञाके अनुसार जीवादि तत्वोंको जानकर आत्माका स्वरूप परसे भिन्न विचारे। तत्वार्थसारमें कहा है—

प्रमाणीकृत्य सार्वज्ञीमाज्ञामर्थावधारणम्। गहनाना पदार्थानामाज्ञाविचयमुच्यते ॥ ४०-७ ॥

भावार्थ—सर्वज्ञकी आज्ञाके अनुसार कठिन पदार्थोंका स्वरूप निश्चय करके उनके स्वरूपका विचारना आज्ञाविचय धर्मध्यान कहा जाता है।

(२) अपायविचय—हमारे रागादि भावोंका कैसे नाश हो, दूसरे जीव कुमार्गको छोडकर किस-तरह सुमार्गपर आवे व वीतरागभावको प्राप्त करें ऐसा ध्यान अपायविचय है। तत्वार्थसारमें कहा है—

कथ मार्गं प्रपद्येरन्नमी उन्मार्गतो जनाः। अपायमिति या चिन्ता तदपायविचारणम् ॥ ४१–७ ॥

भावार्थ—जगतके प्राणी किसतरह कुमार्गसे छूटकर सुमार्गमें चले ऐसी चिंता सो अपायविचय धर्मध्यान है।

(३) विपाकविचय—अपनी व दूसरे प्राणियोंकी अच्छी या बुरी अवस्थाओंको देखकर कर्मोंके उदयको विचारना सो विपाकविचय धर्मध्यान है। तत्वार्थसारमें कहा है—

द्रव्यादिप्रत्यय कर्म फलानुभवन प्रति। भवति प्रणिधानं यद्विपाकविचयस्तु सः ॥ ४२–७ ॥

भावार्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके कारणसे जो कर्मोंके फलका अनुभव होता है उसका चिन्तवन सो विपाकविचय धर्मध्यान है।

(४) संस्थानविचय—तीन लोकका आकार विचारना, जीवोंके स्थान व सिद्धक्षेत्रको विचारना संस्थानविचय धर्मध्यान है। तत्वार्थसारमें कहा है—

लोकसंस्थानपर्यायस्वभावस्य विचारणम्। लोकानुयोगमार्गेण संस्थानविचयो भवेत् ॥ ४३–७ ॥

भावार्थ—लोकानुयोग शास्त्रोंके द्वारा लोकका आचार व उसकी अवस्था व स्वभावका या लोकमें प्राप्त छः द्रव्योंके स्वभावका विचारना सो संस्थान विचय धर्मध्यान है।

शुक्लध्यानको शून्य ध्यान व अवकाश ध्यान भी कहते हैं यही केवलज्ञानका कारण है। इसके भी चार भेद हैं, पहले दो ध्यान केवलज्ञानके पहले होते हैं। अकेले दो ध्यान केवलीके होते हैं।

(१) पृथक्त्व वितर्क वीचार—यह आठवें गुणस्थानसे बारहवेंके प्रारंभ तक होता है। इस ध्यानमें शुद्धोपयोग होता है, कषायका उदय अति मन्द है। परिणामोंकी उज्वलता यहां अनन्तगुणी बढ़ती जाती है। पूर्व अभ्याससे यहां अबुद्धिपूर्वक पलटन होती है, ध्याताको खबर नहीं होती है। यह ध्यान श्रुतके आधार पर होता है। तीन प्रकारकी पलटन होती है। मन वचन, काय, योगकी परस्पर पलटन हो। उपयोग कायसे वचन, वचनसे मनपर जावे व मनसे काय व वचनपर जावे। शब्दसे दूसरे शब्दपर तथा ध्येय पदार्थमें द्रव्यसे किसी गुणपर या पर्यायपर इस तरह पलटन होती है। इस शुक्लध्यानसे मोह-

नीय कर्मका सर्वथा उपशम या क्षय किया जाता है। यहां निर्मल स्वानुभवकी दशा होती है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

द्रव्याण्यनेकभेदानि योगैर्ध्यायति यत्त्रिभि· । शान्तमोहस्ततो ह्येतप्रथक्त्वमिति कीर्तितम् ॥ ४५–७ ॥

श्रुत यतो वितर्कः स्याद्यतः पूर्वार्थशिक्षितः । पृथक्त्व ध्यायति ध्यानं सवितर्कं ततो हि तत् ॥ ४६–७ ॥

अर्थव्यंजनयोगाना वीचारः सङ्क्रमो मतः । वीचारस्य हि सद्भावात् सवीचारमिदं भवेत् ॥ ४७–७ ॥

भावार्थ—इस ध्यानमें तीनों योगोंसे अनेक भेदरूप द्रव्योंको मोहको शांत करता हुआ साधु ध्याता है, इसलिये इसे पृथक्त्व कहते हैं। पूर्वोके अर्थके ज्ञानसे श्रुतका अवलम्बन होता है उसको वितर्क कहते हैं, उस श्रुतके भावको भी भिन्न करके ध्याते हैं इसलिये इसे सवितर्क कहते हैं। यहां एक ध्येयके अर्थसे दूसरे ध्येय पदार्थपर, एक शब्दसे दूसरे शब्दपर, एक योगसे दूसरे योगपर पलटन होती है इसलिये इसको वीचार सहित कहते हैं।

(२) एकत्व वितर्क अवीचार—इस दूसरे शुक्लध्यानको क्षीणमोही १२ वें गुणस्थानधारी साधु ध्याता है। यहां एक कोई योग व एक कोई ध्येय व एक कोई शब्दका आलम्बन है, पलटन नहीं है, इस ध्यानसे शेष तीन घातीय कर्मोंका क्षय करके अरहन्त केवलज्ञानी होजाता है। अन्तर्मुहूर्त इस ध्यानमें ठहरनेसे शरीरसे निगोद जीव चले जाते हैं व शरीरकी धातु पककर शुद्ध होजाती है। शरीर परमौदारिक स्फटिक या कपूर समान निर्मल होजाता है। तत्वार्थसारमें कहा है—

द्रव्यमेकं तथैकेन योगेनान्यतरेण च। ध्यायति क्षीणमोहो यत्तदेकत्वमिद भवेत् ॥ ४८–७ ॥

श्रुतं यतो वितर्कः स्याद्यतः पूर्वार्थशिक्षितः । एकत्वं ध्यायति ध्यानं सवितर्कं ततो हि तत् ॥ ४९–७॥

अर्थव्यञ्जनयोगाना वीचारः सङ्क्रमो मतः। वीचारस्य ह्यसद्भावादवीचारमिद भवेत् ॥ ५०–७ ॥

भावार्थ—इस ध्यानमें एक किसी योगसे एक किसी द्रव्यको या ध्येयको एक किसी शब्दके द्वारा ध्याया जाता है, इसलिये इसे एकत्व कहते हैं। पूर्वोके ज्ञानसे प्राप्त श्रुतको वितर्क कहते हैं। वहां एक ही श्रुतके मलका आलम्बन है, इसलिये सवितर्क है। ध्येय रूप अर्थ, शब्द व योगकी पलटनको विचार कहते हैं। वह वीचार यहां नहीं है, इसलिये इसको अतीचार कहते है।

(३) सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति—यह तेरहवें गुणस्थानमें जब अन्तर्मुहूर्त रह जाता है तब होता है, जब काय योगका परिणमन अति सूक्ष्म होजाता है, इसके द्वारा १४ वें अयोग गुणस्थानमें जाता है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

आवितर्कमवीचारं सूक्ष्मकायावलम्बनम्। सूक्ष्मक्रियमवेद्ध्यानं सर्वभावगत हि तत् ॥ ९१—७ ॥

काययोगेऽतिसूक्ष्मे तद्वर्त्तमानो हि केवली। शुक्लं ध्यायति संरोद्धुं काययोगं तथाविधम् ॥ ९२—७ ॥

भावार्थ—तीसरे शुक्लध्यानमें न श्रुतका आलम्बन है न कोई पलटन है। सूक्ष्म काय योगका आलम्बन है, सर्व भावोंके प्राप्त है। जब काय योग अति सूक्ष्म रह जाता है तब केवली भगवानके होता है देवके सर्व प्रकार काय योगका निरोध होजाता है।

(४) व्युपरतक्रियानिवर्ति—यह अयोग गुणस्थानमें पञ्चलघु अक्षर उच्चारण काल मात्र होता है। इस ध्यानसे चार अघातीय कर्म भी क्षय होजाते हैं और यह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

अवितर्कमवीचारं ध्यानं व्युपरतक्रियम्। परं निरुद्धयोग हि तच्छैलेस्यमपाश्रिमम् ॥ ९३—७ ॥

तत्पुना रुद्धयोगः सन् कुर्वन् कायत्रयासनम्। सर्वज्ञः परमं शुक्लं ध्यायत्यप्रतिपाचि तत् ॥ ९४—७ ॥

भावार्थ—चौथे ध्यानमें न वितर्क है, न वीचार है, न क्रिया है। योग रहित भगवानके होता है, वे सर्वज्ञ भगवान इस निश्चल परम शुक्लको ध्याते हुए कार्मण, तैजस व औदारिक तीनों शरीरोंको त्यागकर शुद्धात्मा होजाते हैं। ज्ञानसारमें शून्य ध्यानका स्वरूप कहा है—

सुण्णज्झाणे णिरओ चइगयणिस्सेसकरणवावारो। परिरुद्धचित्तपसरो पावइ जोई परं ठाणं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—शून्य ध्यानमें लीन योगीका सर्व व्यापार बन्द होजाता है, चित्तका प्रसार रुक जाता है इस शून्य ध्यानसे परम स्थान जो मोक्षपद है सो प्राप्त होजाता है।

(१२) द्रव्य, भाव शुद्ध–ये तीन भाव।
(१३) तत्व, नित्य, प्रकाशन–ये तीन भाव।

द्रव्यस्य भाव सुद्धस्य, तत्तु नित्तु प्रकासनं।
सुद्धात्मा भावए नित्यं, त्रिभङ्गी दल षंडितं ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थ—(द्रव्यस्य भाव सुद्धस्य) आत्माके द्रव्यको, आत्माके भावोंको व शुद्ध स्वरूपको ध्यावे (नित्तु तत्तु प्रकासन सुद्धात्मा नित्य भावए) अविनाशी तत्वके प्रकाश करनेवाले शुद्धात्माकी सदा भावना करे (त्रिभङ्गी दल षडित) इन तीन प्रकारके ध्यानसे कर्मोंके दलका क्षय होजाता है।

भावार्थ—आत्मा द्रव्य सत् पदार्थ है, गुण पर्यायवान है, अनन्त गुण पर्यायका धारी है, अमूर्तीक है, असंख्यात प्रदेशी है। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व इन छः सामान्य गुणोंका धारी है। ये छः सामान्य गुण छहों द्रव्योंमें पाए जाते हैं। इनका स्वरूप इसतरह है—

(१) अस्तित्व–जिससे द्रव्यकी सत्ता सदा बनी रहे, कभी अभाव न हो।

(२) वस्तुत्व–जिससे द्रव्य कोई न कोई अर्थको करे, व्यर्थ न हो।

(३) प्रमेयत्व–जिससे द्रव्य किसीके ज्ञानका विषय हो।

(४) अगुरुलघुत्व–जिससे द्रव्य अपने गुणपर्यायोंको लिये हुए अपनी मर्यादामें रहे, न किसी गुणको बढावे, न घटावे।

(५) द्रव्यत्व–जिससे द्रव्य सदा परिणमन करता रहे, कूटस्थ नित्य न रहे।

(६) प्रदेशत्व–जिससे द्रव्यका कोई न कोई आकार हो, चाहे मूर्तीक हो चाहे अमूर्तीक आत्माके प्रसिद्ध विशेष गुण, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र आदि हैं। द्रव्य अखंड अकृत्रिम नित्य होता है तौभी उसमें स्वाभाविक या वैभाविक पर्यायें होती हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये तो स्वाभाविक पर्यायें ही होती हैं। जीव और पुद्गलमें शुद्धावस्थामें स्वाभाविक पर्यायें व अशुद्धावस्थानमें वैभाविक पर्यायें होती हैं। गुण सभी द्रव्यमें बने रहते हैं, पर्याय क्रम क्रमसे होती है। एक ही समयमें द्रव्यमें पुरानी पर्यायका नाश व नवीन पर्यायका उत्पाद होता है व द्रव्य बना रहता है। इसलिये द्रव्य उत्पाद व्यय

ध्रौव्यस्वरूप है। जब संसार पर्यायका नाश होता है तब ही सिद्ध पर्यायका जन्म होता है, तथापि आत्मा ध्रुव बना रहता है। जीव और पुद्गलमें वैभाविक शक्ति भी है। जब परका निमित्त हो तब विभावरूप परिणमन होजाता है।

हरएक आत्माकी सत्ता भिन्न २ है तथापि हरएक आत्मा दूसरे आत्माके बराबर है। सर्व ही आत्माएँ एक समान असंख्यात प्रदेशी हैं व सर्व गुणोंमें समान हैं। आत्मामें संकोच विस्तार शक्ति है, जो नामकर्मके उदयसे काम करती है, जिससे यह आत्मा प्राप्त शरीरके प्रमाण छोटा या बड़ा होजाता है। प्रदेश संकोच व विस्तृत होजाते हैं। सिद्धात्मा होनेपर अन्तर जैसा था वैसा रह जाता है, पूर्व शरीर प्रमाण ध्यानाकार होता है। नामकर्मके अभावसे संकोच विस्तार नहीं होता है। आत्मद्रव्य जब संसारमें मिथ्यात्व कर्मके उदयको भोगता है तब इसको बहिरात्मा कहते हैं। जब मिथ्यात्वका उदय नहीं होता है व सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है तब इसको अन्तरात्मा कहते हैं। शुद्धात्माको परमात्मा कहते हैं। अपना ही आत्मा शुद्ध निश्चयनयसे देखा जावे तो यह बिलकुल शुद्ध है, सिद्धके समान है। यदि कर्म सहित दृष्टिसे देखा जावे तो वह वर्तमानमें अशुद्ध है, संसारी है।

आत्माके भाव पांच प्रकारके होते हैं—

(१) औपशमिक—मोहनीय कर्मके उपशमसे होनेवाले दो भाव–औपशमिक सम्यक्त व औपशमिक चारित्र।

(२) क्षायिक—चारों घातीय कर्मोंके क्षयसे होनेवाले नौ केवल लब्धिरूप भाव–अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग, अनन्त उपभोग, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र। केवलज्ञानीमें ये सब होते हैं।

(३) क्षायोपशमिक या मिश्रभाव—जहां सर्व घातीय कर्मस्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय हो व जो सत्तामें कर्म हैं उनका उपशम हो व देश घातीय कर्मस्पर्द्धकोंका उदय हो, तब जो भाव होते हैं, वे अठारह प्रकारके मिश्र भाव हैं।

४ मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान, ३ कुमति, कुश्रुत, कुअवधि अज्ञान, ३ चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ५ क्षयोपशम लब्धियें, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

१ क्षायोपशमिक या वेदक सम्यक्त, १ क्षायोपशमिक चारित्र छठे व सातवें गुणस्थानमें होनेवाला, १ संयमासंयम-देश संयम गुणस्थानमें होनेवाला कुल १८ भाव हैं—

(४) औदयिक—कर्मोंके उदयसे होनेवाले २१ भाव।

४ गति, ४ कषाय, १ लिंगवेद, १ मिथ्यादर्शन, १ अज्ञान, १ असंयत, १ असिद्धत्व, ६ लेश्याएं-कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।

(५) पारिणामिक—कर्मोंकी खास अपेक्षा विना, ३ भाव, भव्यत्व, अभव्यत्व, व जीवत्व।

सर्व भाव २ औपशमिक, ९ क्षायिक, १८ मिश्र, २१ औदयिक, ३ पारिणामिक ५३ भाव होते हैं।

इनमेंसे कर्मबन्धके कारक औदयिक भाव ही होते हैं क्योंकि उन भावोंमें कर्मोंका अनुभाग रस देता है, उनमें मलीनता नहीं होती है। मलीनता ही कर्मोंको बांधती है। शेष चारों भावोंमें आत्माका निज भाव प्रगट होता है, उससे कर्मबन्ध नहीं होता है। जितना अंश कर्मोंका उदय है वह बन्धका कारक है सो भी मुख्यतासे घातीय कर्मोंके उदयसे बन्ध होता है।

धर्मध्यानमें सविकल्प ध्यानको ध्याते हुए आत्मद्रव्यका भेदरूप सर्व स्वरूप ध्यावे व आत्माके सर्व प्रकारके भावोंका विचार कर जावे परन्तु निर्विकल्प ध्यानके लिये एक शुद्धात्माको अभेद ही दिखावे तब स्वानुभव प्रगट होगा। यही स्वानुभव कर्मोंकी निर्जराका कारण है। तत्वानुशासनमें कहा है—

सहवृत्ता गुणास्तत्र पर्यायाः क्रमवर्त्तिनः। स्यादेतदात्मकं द्रव्यमेते च स्युस्तदात्मकाः॥ ११४॥

एवंविधमिदं वस्तु स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकं। प्रतिक्षणमनाद्यंतं सर्वं ध्येयं यथास्थितं॥ ११५॥

तथा हि चेतनोऽसंख्यप्रदेशो मूर्तिवर्जितः। शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञानदर्शनलक्षणः॥ १४७॥

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता द्रष्टा सदाप्युदासीनः। स्वोपात्तदेहमात्रस्ततः पृथग्गगनवदमूर्तः॥ १५३॥

भावार्थ—साथ रहनेवाले गुण व क्रमवर्ती पर्यायोंका धारी द्रव्य गुण पर्यायरूप होता है। सर्व गुण व पर्याय द्रव्यमें व्यापक होते हैं। ऐसे द्रव्य हर समय उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप हैं, अनादि अनन्त हैं। जैसा द्रव्य है उसे वैसा ही ध्याना चाहिये। ऐसा ही मैं चेतन द्रव्य हूँ, असंख्यात प्रदेशी हूँ, अमूर्तीक हूँ, सिद्ध स्वरूपके समान हूँ, ज्ञाताद्रष्टा लक्षणधारी हूँ, मैं सत् पदार्थ हूँ, ज्ञाताद्रष्टा होकर भी परम वीतरागी हूँ। अपनी देह प्रमाण हूँ तथापि देहसे पृथक् हूँ, आकाशके समान अमूर्तीक हूँ।

(१४) तत्व, द्रव्य, काय–ये तीन भाव।

तत्वादि सत्य तत्वानां, द्रव्य काय पदार्थकं।
सार्धं करोति सुद्धात्मा, त्रिभङ्गी समय किंकरो ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थ—(तत्वादि सप्त तत्वाना) जीव तत्वको आदि लेकर सात तत्वोंका तथा (द्रव्य काय पदार्थकं) छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नौ पदार्थोंका जानना जरूरी है (सार्धं सुद्धात्मा करोति) इनकी श्रद्धाके साथ शुद्धात्माका ध्यान करना चाहिये (त्रिभङ्गी समय किंकरो) ये तत्व, द्रव्य, काय तीनोंका श्रद्धान आत्माकी श्रद्धामें कारण है।

व्यवहारनयसे जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन सात तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यक्त कहलाता है। क्योंकि इनके श्रद्धानसे पर्यायोंका ज्ञान होता है कि यह आत्मा इस तरह कर्म बांधकर अशुद्ध होता है व इस तरह कर्मका क्षयकर मुक्त होसकता है। इन्हींमें पुण्य व पाप मिलानेसे नौ पदार्थ होते हैं। पुण्य व पाप आस्रव बन्धमें गर्भित हैं। जीव, अजीव तत्वोंमें जीवादि छः द्रव्य व काल द्रव्यको छोड़कर पांच अस्तिकाय गर्भित हैं। इनका संक्षिप्त स्वरूप नीचे प्रकार जानना चाहिये।

(१) जीव तत्व—निश्चयनयसे यह जीव शुद्ध है, सिद्धके समान है, व्यवहारनयसे कर्मबन्ध सहित होनेसे आप ही रागद्वेष भावोंमें परिणमता है जिससे कर्मका बन्ध होजाता है व आप ही वीतराग भावोंसे परिणमन करके कर्मका संवर व कर्मकी निर्जरा करके मोक्ष प्राप्त होता है। यहां आप ही अपना स्वामी है, अपने ही परिणामोंसे संसार व मोक्षका भागी होता है।

(२) अजीव तत्व—चेतना रहित द्रव्य अजीव तत्वमें गर्भित है। ऐसे द्रव्य पांच हैं–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। जीवको मिलानेसे छः द्रव्य होते हैं। कालको छोड़कर पांच द्रव्य कहलाते हैं। जिसमें परमाणु मिलकर स्कन्ध होजावे, स्कन्ध गलकर परमाणु होजावे उसको पुद्गल कहते हैं। सबसे छोटे अविभागी अंशको परमाणु कहते हैं। दो परमाणुके बन्धरूप या संख्यात, असंख्यात, अनन्त परमाणुओंके बन्धरूपको स्कन्ध कहते हैं। हरएक परमाणु व स्कन्धमें चार विशेष गुण सदा मिलते हैं–स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण। इसीसे पुद्गलको मूर्तीक कहते हैं। स्कन्धोंके कारण पुद्गलके छः भेद किये जासक्ते हैं।

(१) स्थूल स्थूल–जो इतने बन्धरूप हो कि खण्ड किये जानेपर स्वयं न मिल सके जबतक दूसरा द्रव्य न जोडा जावे। जैसे कागज, काठ, पत्थर, खडिया।

(२) स्थूल–बहनेवाले स्कन्ध जो अलग होनेपर फिर मिल जावे। जैसे पानी, शरबत, दूधादि।

(३) स्थूल सूक्ष्म–जो स्कन्ध देखनेमें आवें परन्तु किसी तरह पकड़े न जासके। जैसे धूप, छाया, उद्योत, अन्धेरा।

(४) सूक्ष्म स्थूल–जो देखनेमें नहीं आवे परन्तु अन्य चार इंद्रियोंसे ग्रहण होसके। जैसे हवा, रस, गन्ध, शब्द।

(५) सूक्ष्म–जो स्कन्ध किसी भी इंद्रियसे ग्रहणमें न आवें। जैसे तैजस, कार्मण आदि वर्गणाएँ।

(६) सूक्ष्म सूक्ष्म–एक पुद्गलका अविभागी परमाणु।

स्कन्ध अनेक प्रकारके हैं उनमें पांच प्रकारके स्कन्धोंका हमारा सम्बन्ध है।

आहारक वर्गणाओंसे–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर बनता है।

भाषा वर्गणाओंसे–शब्द बनता है। मनोवर्गणाओंसे–द्रव्यमन बनता है। तैजस वर्गणाओंसे–तैजस शरीर (बिजलीका शरीर) बनता है। कार्माण वर्गणाओंसे–आठ कर्ममय कार्मण शरीर बनता है।

संसारी जीवोंके साथ कार्मण और तैजस शरीरका प्रवाहकी अपेक्षा अनादि सम्बन्ध है। नई वर्गणाएँ आती हैं पुरानी छूटती हैं इस अपेक्षा सादि सम्बन्ध है। मुक्त होनेपर ये दो शरीर छूटते हैं। जीवित अवस्थामें मनुष्य व तिर्यंचोंके दोके सिवाय औदारिक शरीर, नारकी व देवोंके दोके सिवाय वैक्रियिक शरीर होता है।

कार्मण शरीरको कारण शरीर भी कहते हैं। क्योंकि इसी शरीरके निमित्तसे जीव संसारके फँदमें व दुःख सुखमें पड़ा है। इस कार्मण शरीरमें कर्मोंका बन्ध कैसे होता है व कैसे रुकता है व छुटता है इसीको बतानेके लिये शेष पांच तत्व–आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष कहे गये हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्तीक लोकव्यापी एक एक द्रव्य है, जीव पुद्गलोंके गमनमें उदासीन कारण धर्म है, ठहरनेमें उदासीन कारण अधर्म है, आकाश सर्व द्रव्योंको स्थान देनेको समर्थ है, अनन्त आकाशके मध्यमें लोकाकाश है जो छः द्रव्यमई है। काल–कालाणु असंख्यात है या काल द्रव्य द्रव्योंके परिवर्तनमें मदद देता है।

(३) आस्रव तत्व—इसके दो भेद हैं-भावास्रव, द्रव्यास्रव । जिन आत्माके अशुद्ध परिणामोंसे कर्मोंका आना या बन्धके सम्मुखपना होता है उनको भावास्रव कहते हैं तथा कर्म वर्गणाओंके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं । भावास्रवके चार मूल भेद हैं--मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय, योग । इसीके ५७ भेद होजाते हैं ।

मिथ्यात्व पांच + अविरत बारह + कषाय पचीस + योग पन्द्रह = सत्तावन मिथ्यात्व व एकांत-वस्तुमें नित्य, अनित्य, एक अनेक आदि स्वभाव होनेपर भी एक ही मानना अन्यका निषेध करना, (२) विपरीत-अधर्मको धर्म मानना जैसे पशुबलि धर्म है, (३) संशय-सत्य, असत्य तत्वमें निश्चय न करना, (४) विनय-सर्व धर्मोंको विना विचारे समान मानके विनय करना, (५) अज्ञान-तत्वके जाननेमें निरादर ।

अविरत १२—पांच इन्द्रिय व मनको वश न रखना व पांच स्थावर व त्रसकी दया न पालना ।

कषाय २५—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४ और नौ नोकषाय-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद ।

योग १५—पहले बता चुके हैं ।

(४) बन्ध तत्व—जिस समय कर्म आते हैं उसी समय बन्धते हैं । बन्ध चार प्रकारका एक ही समयमें होता है । प्रकृति बन्ध—कर्म वर्गणाओंमें ज्ञानावरणादि स्वभाव पड़ना । प्रदेश बन्ध—किस प्रकृतिके कितने कर्म वर्गणा बन्धे । ये दोनों बन्ध मन, वचन, कायके अनुसार होते हैं । स्थितिबन्ध-कर्म कितने कालतक बन्ध अवस्थाको न छोड़ेंगे, उस कालकी मर्यादा-आयु कर्मको छोड़कर सातों ही कर्मोंके तीव्र कषायसे अधिक स्थिति व मंद कषायसे कम स्थिति पड़ती है । नर्कायुकी तरफसे अधिक व मन्दसे कम, शेष तीन आयुकी मन्दसे अधिक व तीव्रसे कम पड़ती है । अनुभाग बन्ध—तीव्र या मन्द फलदान शक्ति पड़ना । चार घातीय कर्म व आस्रवादि पापरूप अघातीयमें तीव्र कषायसे अधिक व मन्द कषायसे कम अनुभाग पड़ता है । सातावेदनीय आदि पुण्य कर्मोंमें मन्द कषायसे अधिक व तीव्र कषायसे कम अनुभाग पड़ता है । कर्म स्वयं बन्धते हैं, स्वयं पककर फल देते व गिर जाते हैं । आस्रव बन्धके कारण भाव एक ही प्रकारके होते हैं ।

(५) संवर तत्व–जिन भावोंसे कर्म आते हैं उनको रोकना भाव संवर है। कर्मोंको आने न देना द्रव्य संवर है। भावास्रवके विरोधी भाव सो भाव संवर है। मिथ्यात्वका विरोधी सम्यक्त, अविरतिका विरोधी व्रतपालन, कषायका विरोधी वीतरागभाव, योगका विरोधी निष्कम्पभाव। संवरके कारण विशेष भाव हैं–५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, १० उत्तम क्षमादि धर्म, १२ अनित्यादि भावना, २२ परीषह जय, ५ प्रकारके चारित्र।

(६) निर्जरा तत्व–कर्म पककर अपने समयपर झड़ते हैं सो सविपाक निर्जरा है। तपादिके कारण शीघ्र कर्मोंको दूर करना सो अविपाक निर्जरा है। निर्जराका उपाय वीतरागभाव है जो ध्यानसे प्राप्त होता है।

(७) मोक्ष तत्व—सर्व कर्मोंसे छूटकर आत्माका अकेले रह जाना सो मुक्ति है। शुद्धात्मा मोक्ष दशामें अपने स्वभावका आनन्द नित्य लेता रहता है।

जितने आकाशको एक पुद्गल अविभागी परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। यह एक प्रकारका माप है जिससे छः द्रव्योंको मापा जावे तो जो द्रव्य बहुत प्रदेशवाले हैं उनको काय कहते हैं। काल द्रव्यका एक प्रदेश है। असंख्यात कालाणु लोकाकाशमें पृथक् २ हैं। वे कभी मिलते नहीं, इससे कायवान नहीं हैं। जीव द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं, पुद्गलके स्कन्धकी अपेक्षा संख्यात, असंख्यात, अनन्त प्रदेश हैं। धर्मास्तिकायके असंख्यात प्रदेश होते हैं, अधर्मास्तिकायके भी असंयात प्रदेश होते हैं, आकाशके अनन्त प्रदेश होते हैं। इसलिये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश काय हैं–पञ्चास्तिकाय हैं।

इन सात तत्वोंमें व्यवहार नयसे जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ग्रहण करने योग्य है; आस्रव, बन्ध, त्यागने योग्य हैं। निश्चय नयसे एक शुद्धात्मा ही ग्रहण करने योग्य है।

नव पदार्थ या तत्वमें एक जीव ही हमें प्राप्त हो ऐसी भावना श्री समयसारकलशामें की गई है—

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः। पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्॥
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्। तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥ ६–१ ॥

भावार्थ—शुद्ध नयकी अपेक्षा अपने एक स्वभावमें स्थित, अपने गुणोंमें व्याप्त, पूर्ण ज्ञान समूह इस आत्माको अन्य द्रव्योंसे भिन्न अनुभव करना सो ही निश्चयसे सम्यग्दर्शन है। आत्मा भी उतना ही बड़ा है। इसलिये नवतत्वकी कल्पनाको छोड़कर हमें एक अपना आत्मा ही प्राप्त हो।

(१५) समय, सुद्ध, सार्थ–ये तीन भाव।

(१६) समय, सार्थ, ध्रुव–ये तीन भाव।

समयं दर्सनं न्यानं, चरनं सुद्ध भावना।
सार्थं सुद्ध चिद्रूपं, तस्य समय सार्थ ध्रुवं॥ ६३॥

अन्वयार्थ—(समयं दर्सनं न्यान) समय जो आत्मा पदार्थ है वह दर्शन ज्ञान स्वरूप है (चरन सुद्ध भावना) उसी दर्शन ज्ञानमई आत्मामें चलना व उसका ही अनुभव करना यह शुद्ध भावना है (सुद्ध चिद्रूप सार्थं) शुद्ध चैतन्य रूप आत्मा ही परम पदार्थ है (तस्य समय सार्थं ध्रुवं) उसी आत्माको ही समय कहते हैं, प्रयोजनभूत पदार्थ कहते हैं, उसीको ध्रुव अविनाशी निश्चल पदार्थ कहते हैं।

भावार्थ—आत्मा निश्चयसे समय है, अपने स्वरूपमें एक भावसे परिणमन करनेवाला तथा जानने-वाला है। यह अपने ही स्वभावमें रमणशील होनेसे यही स्व समय है जब। यह स्वभावमें रमता है तब इसमें शुद्ध तत्वकी ही भावना होती है। स्वभावमें रमणरूप आत्माका परिणमन होना सो ही सार्थक है क्योंकि उस समय निश्चय रत्नत्रयका लाभ है। आप ही सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप होरहा है, यही एक स्वानुभवमई मोक्षमार्ग है। यही धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान है, यही कर्मोंका क्षयकारक भाव है। यह आत्मा निश्चयसे समय है, परम पदार्थ परमात्मा है व यही ध्रुव है, सदा एक रूप है, निश्चल है। शुद्धात्मा मई परिणमन होना परमानन्दको प्रदान करता है। द्वादशांग वाणीका सार एक अपने ही शुद्धात्माका अनुभव है। अनादिकालसे अज्ञानीकी अनुमति रागद्वेषमई मैली होरही है। इसलिये उसको रागद्वेषका ही मलीन स्वाद आता है, वीतराग स्वरूप निज आत्मीक भावका स्वाद नहीं आता है। क्योंकि इसको यह पता नहीं चला कि मैं तो एक आत्मा द्रव्य हूँ–परसे भिन्न हूँ। अपने स्वरूपको शुद्ध सिद्धसम जानकर निश्चय हुए विना अपने स्वरूपमें रमण होना असंभव है। जैन सिद्धांतका सार यही है जो अपने आत्माका ही स्वाद लें। सर्व परसे उदासीन होजावे।

अतीन्द्रिय आनन्दका अद्भुत स्वाद स्वरूप रमणमें आता है। आत्माकी सुन्दरता स्वरूप रहनेमें

है, पर समय रूपमें रहना ही अज्ञान है, मोह है, भ्रम है। जिसने अपने घरको पहचान लिया वह अब क्यों दूसरेके घरमें रमण करेगा। धर्म आत्माका स्वभाव है, नित्य स्वभावमें रमण होना ही स्वात्मानुभव है। मुमुक्षुको योग्य है कि शुद्ध निश्चयनयको आश्रय लेकर आत्माको सिद्ध समान अमूर्तीक ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय जाने, माने व ऐसा ही निरन्तर मनन करे। भावना करनेसे एकाग्रता प्राप्त होती है। एकाग्रतामें ही स्वानुभव है। निजानन्दका भोग है। यही आस्रवोंको रोकनेके लिये दृढ़ आर्गल है। स्वानुभव दशामें मनके विचार, वचनके आलाप व कायका हलन चलन सर्व बन्द होजाता है। एक ऐसे अनिर्वचनीय भावमें पहुँच जाता है जहां भावना भी बन्द होजाती है। इसीको अद्वैत अनुभव कहते हैं। आपसे ही आपमें आपके लिये आपमेंसे ही आपको आप ही ध्यावे। इन छः कर्ता कर्म करण सम्प्रदान, अपादान अधिकरणमें आप ही रहे। कहनेके लिये छः विकल्प हैं। अद्वैत अनुभवमें षट्कारकका भी विकल्प नहीं है। इस स्वानुभवमें सर्व चिंताएँ डूब जाती हैं। निर्मल शांत रसका ही स्वाद आता है। विना प्रयत्नके संवर निर्जरा होती हैं। समयसारमें कहा है:—

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदं त हि ससमयं जाणे। पुग्गल कम्मुवदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥ २ ॥

भावार्थ—जब यह जीव आपहीका श्रद्धान, ज्ञान व आचरण करता रहता है तब इसको स्वसमय रूप जानो। जब यह पर पुद्गलके उदयके भीतर ठहरता है तब इसे पर समय जानो।

णाणह्मि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य। ते पुणु तिण्णि वि आदा, तम्हा कुण भावण आदे ॥ ११ ॥

भावार्थ—भेद रूप अपने ज्ञानमें, दर्शनमें व चारित्रमें भावना करनी चाहिये परन्तु निश्चयसे ये तीनों ही आत्मा हैं इसलिये एक आत्माकी ही भावना करनी चाहिये।

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी। तह्मि ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ १९८ ॥

भावार्थ—परमार्थ या उत्तम पदार्थ एक आत्मा है, वह एक साथ अपने आपमें रमण करनेवाला है इसलिये समय है, सर्व नयोंके विकल्पोंसे अतीत परम शुद्ध है, केवल चैतन्य वस्तु है इससे केवली है, स्वानुभवमें स्थित है इससे मुनि है; ज्ञान स्वरूपसे ज्ञानी है, अपने ही स्वभावमें रहता है इससे स्वभाव रूप है। जो कोई मुनिगण ऐसे आत्माके भीतर स्थिर होकर स्वानुभव करते हैं वे ही निर्वाणको पाते हैं।

मूलाचारमें वट्टकेरस्वामी प्रत्याख्यान अधिकारमें कहते हैं—

ममन्ति परिवज्जामि णिम्ममत्ति मुवट्ठियो। आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे॥ ४९॥

भावार्थ—मैं सबसे ममता त्यागता हूं, निर्ममत्वभावसे स्थिर होता हूं। मैंने अपने ही आत्माका आलम्बन लिया है, और सबका त्याग किया है।

(१७) सम्यक्त, वंदना, स्तुति—ये तीन भाव।

सम्यक्त सुद्ध दृष्टिं च, वदना नित्य सास्वतं।
स्तुतिं सुद्ध द्रव्यस्य, त्रिभङ्गी दल निरोधनं॥ ६४॥

अन्वयाथ—(सम्यक्त सुद्ध दृष्टि च) शुद्ध आत्माका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है (वंदना नित्य सास्वतं) इसी अपने शुद्धात्माको नित्य अविनाशी ध्याना निश्चयसे वन्दना है (स्तुति सुद्ध द्रव्यस्य) शुद्ध द्रव्यकी ही व्यवहारसे स्तुति करते हुए निश्चयसे उसी शुद्ध द्रव्यमें तन्मय होना निश्चय स्तुति है (त्रिभङ्गी दल निरोधन) सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन सहित वन्दना, सम्यग्दर्शन सहित स्तुति कर्माश्रवके रोकनेवाले हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन संसारका नाश करनेवाला गुण है, जिसको यह गुण प्राप्त होजाता है वह मानो मोक्षरूप ही होजाता है, वह सदा अपने शुद्धात्माको उसी तरह कर्म व शरीरादिसे भिन्न देखता है जैसे जलके ऊपर पड़ी हुई चिकनई अलग दीखती है। स्वात्मानुभवकी शक्ति सम्यग्दर्शनसे पैदा होजाती है। सम्यक्त होनेपर फिर कोई जीव दुर्गतिमें नहीं जाता है। सम्यक्तके साथमें स्वर्गकी देवायुका या उत्तम मानव आयुका ही बन्ध होता है। जिसने सम्यक्त होनेके पहले आयु बन्ध किया हो वह भी पहले नर्कसे और नर्कमें नहीं जाता या भोगभूमिका पशु या मानव पैदा होता है।

सम्यग्दर्शनके साथ तीथकरादि व पांच परमेष्ठी आदि महान आत्माओंको जो वन्दना की जाती है वह यद्यपि शुभोपयोग है, परन्तु सम्यग्दर्शनके साथ होनेसे उससे भी पापोंका क्षय होता है। वह वन्दना वीतरागता मिश्रित सराग भाव है। वन्दना व स्तुतिके दो भेद हैं। जहां वचन व कायसे शब्द व विनय हो वह तो द्रव्य वन्दना व द्रव्य स्तुति है। जिसको वन्दना व स्तुति की जावे उसके गुणोंको मनमें विराजमान किया जावे वह भाव वन्दना व स्तुति है। भाव सहित द्रव्य वन्दना व स्तुतिकी सफ

लता है। सिद्धात्माको अपने भावोंमें स्थापित करना निश्चय वन्दना है। मस्तक झुकाना, हाथ जोड़ना, द्रव्य वन्दना है। वचनोंसे स्तुति पढ़ना द्रव्य स्तवन है। सिद्धोंका शुद्ध स्वरूप मनमें अंकित करना भाव स्तुति है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीव जब अपना उपयोग स्वात्मानुभवमें नहीं जोड़ सकते हैं तब शुद्धात्माओंकी स्तुति व उनको वन्दना करके उपयोगको शुद्ध भावमें लेजानेकी चेष्टा करते हैं। शुद्धात्माकी तरफ परिणमन होनेसे वन्दना व स्तवन करते हुए बहुत पापोंका क्षय होता है। महान् पुरुषोंके शरीराश्रित गुणोंकी महिमा गाना व्यवहार स्तुति है। केवल आत्माको लक्ष्यमें लेकर आत्मीक गुणोंका गाना निश्चय स्तुति है। यही स्तुति सची स्तुति है व शुद्धोपयोगमें पहुँचानेवाली है।

व्यवहार स्तवनका दृष्टान्त यह है-समयसार कलशमें कहा है—

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरुन्धन्ति ये। धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णन्ति रूपेण ये॥
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतम्। वंद्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः॥ २४-१॥

भावार्थ—वे तीर्थङ्कर महाराज वन्दनीय हैं, जिनकी शरीरकी कांति दशों दिशाओंमें फैल रही है, जो अपने तेजसे बड़े २ तेजस्वी व्यक्तियोंके तेजको रोक रहे हैं, जो अपने रूपसे मनुष्योंके मनको हरण कर रहे हैं, जो अपनी दिव्यध्वनिसे कानोंमें धर्मामृतका सिंचन कर रहे हैं।

निश्चय स्तुतिका दृष्टान्त यह है-समयसारमें कहा है—

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं। तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया वेंति॥ ३७॥

भावार्थ—जो कोई मोहको जीतकर ज्ञान स्वभावसे पूर्ण अपने आत्माका अनुभव करता है उसे परमार्थके ज्ञाता जित मोह साधु कहते हैं। इस स्तुतिमें लक्ष्य आत्मा ही पर जाता है यह निश्चय स्तुति है।

श्री समन्तभद्राचार्य स्वयम्भूस्तोत्रमें कहते हैं—

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा। वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून्॥ १०७॥

भावार्थ—व्यवहार स्तवनका दृष्टांत—जिस मल्लिनाथ स्वामीकी कनकमई मूर्ति अपनी शोभासे भामण्डल बना रही है व जिनकी वाणी तत्वको कथन करती हुई स्यात् पदसे विभूषित हो साधुओंके मनको रमा रही है।

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्। तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि॥ ११०॥

भावार्थ—यह निश्चय स्तुति है–जिस मल्लिनाथ भगवानने शुक्लध्यानकी बड़ी तेज तपरूपी अग्निको जलाकर अनन्त पाप कर्मोंको जला डाला और जिनका आत्मा सिंह समान जिनेन्द्र होगया, कृतकृत्य होगया, सर्व शल्य रहित होगया, ऐसे परमात्मा श्री मल्लिनाथकी शरणमें मैं प्राप्त होता हूं।

(१८) पदार्थ, व्यंजन, स्वरूप–ये तीन भाव।

पदार्थ पद विंदन्ते, विंजनं न्यान दृष्टि तं।
स्वरूपं सर्व चिद्रूपं, विंजनं पद विंदकं ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थ—(पदार्थ पद विंदन्ते) परमात्मा पदार्थसे परमात्माके पदका अनुभव होता है (विंजन न्यान दृष्टि त) उसका लक्षण या चिह्न शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शन है (स्वरूप सर्व चिद्रूप) उसका स्वरूप सर्वांग चैतन्यमय है, अमूर्तीक है (विंजन पद विंदक) ज्ञान दर्शन लक्षणके द्वारा परमात्मा पदार्थका अनुभव होता है।

भावार्थ—नौ पदार्थोंमें जीव नामा पदार्थका अनुभव करना चाहिये। लक्षणसे लक्षणको ग्रहण किया जाता है। जीव पदार्थका लक्षण शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शन है। यह लक्षण अव्याप्ति, अतिव्याप्ति व असम्भव दोषोंसे रहता है। सर्व ही जीवोंका निज गुण ज्ञान दर्शन है। जीवके सिवाय किसी भी अजीवमें वे ज्ञान दर्शन नहीं पाए जाते हैं। यह लक्षण असम्भव भी नहीं है स्वयं प्रगट है। हरएक ज्ञानीको अनुभव है कि मैं देखता जानता हूं। जो स्व परको देखने जाननेवाला है या जो निश्चयसे आपसे आपको देखने जाननेवाला है वही जीव है। उस जीवका सर्वांग स्वरूप चैतन्यमय है। पुद्गल मई उसका स्वरूप नहीं है वह अनन्त गुण पर्यायका धारी होकर भी चैतन्यभावसे सर्व प्रदेशोंमें पूर्ण है। इसतरह वह जीव पदार्थ स्वयं परमात्मा, परमेश्वर, जिन, अरहन्त, सिद्ध, निरंजन, निर्विकार, वीतरागी, कृतकृत्य, परमानन्दी है वही मैं हूं, ऐसा लक्ष्यमें लेकर अपने जीव पदार्थका ध्यान व अनुभव करके परमानन्दका लाभ लेना चाहिये। कर्म संयोग जनित सर्व पर्यायोंसे वह भिन्न है। अकेले जीव पदार्थका स्वाद लेना ही हितकर है। तब ही सच्चा स्वाद आएगा। कर्म मिश्रित भावका स्वाद अशुद्ध स्वाद है।

समयसार कलशमें कहा है—

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावादविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्तेर्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥ ३–१ ॥

भावार्थ—यद्यपि निश्चयसे मैं शुद्ध चैतन्यमई मूर्ति हूँ तौभी मेरी अनुभूति अनादिकालसे पर परणतिको करनेका कारण जो मोह नामकर्म इसके उदयसे रागद्वेषमई होकर मली होरही थी। मुझे मलीन ही स्वाद आता था। जब मैं समयसारका व्याख्यान करता हूँ। इससे मेरी यह अनुभूति परम शुद्ध होजावे। मैं शुद्धात्माका ही निर्मल आनन्दमई स्वाद लूं ऐसी भावना करता हूँ। और भी कहा है—

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यतिव्यापि वा व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यताम् ॥ १०–२ ॥

भावार्थ—अजीव दो प्रकार हैं–एक पुद्गल जो वर्णादिकी मूर्ति रखते हैं। दूसरे धर्माधर्म आकाश, काल जो वर्णादि रहित अमूर्तीक हैं। इसलिये जगतके विद्वान जीवका अमूर्तीक लक्षण मानके नहीं ध्याते हैं। क्योंकि इसमें अतिव्याप्ति दोष होता है। न रागी द्वेषी लक्षण मानके ध्याते हैं, क्योंकि इसमें अव्याप्ति दोष आता है। सिद्धोंमें रागद्वेष नहीं है। इसलिये अतिव्याप्ति दोषोंसे रहित प्रगट चैतन्यमई लक्षणको ध्यानमें लेकर जीव तत्वका विचार करते हैं इससे जीव तत्व स्पष्ट लक्षमें आजाता है।

शुद्ध निश्चयनयसे अपने आत्माको अभेद, शुद्ध, एक, केवल, निश्चल, ज्ञातादृष्टा, परमानन्दी, ध्याना चाहिये। यही ध्यान कर्मोंके बन्धनको काटनेवाला है। जो शुद्ध स्वरूपको ध्यावे वही परमात्मा होजावे। आप ही परमात्मा है, परसे मोह छोड़नेसे ही बन्धन गल जाते हैं। अपना पद झलक जाता है। जीव पदार्थका ही अनुभव आस्रव निरोधक है।

---

(१९) नन्द आनन्द, सहजानन्द सुद्ध–ये तीन भाव।

आनन्द नन्द रूवेन, सहजानन्द जिनात्मनं।
सुद्ध स्वरूप तत्वानं, नन्त चतुष्टय संजुतं ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थ—(आनन्द नन्द रूवेन) आत्मीक आनन्दमें मगन होना (सहजानन्द जिनात्मन) जितेन्द्रिय

आत्माके भीतर सहजानन्दका प्रकाश होना (शुद्ध स्वरूप तत्त्वानं . नन्त चतुष्टय सजुत) इसीके कारण शुद्ध स्वरूप जो आत्माका तत्व है सो प्रगट होता है, जहां अनन्तचतुष्टय प्रकाशमान होजाते हैं।

भावार्थ—आनन्दसे आनन्दकी वृद्धि होती है, जैसे दोयजका चन्द्रमा स्वयं पूर्णमासीका चन्द्र होजाता है। जब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब स्वानुभवके जागृत होनेसे आत्मानन्दमें मगनता होती है। चौथे, पांचवे, छठे गुणस्थानमें उपयोग प्रमाद सहित होजाता है तब आत्मानुभव हर समय नहीं रहता है। साधकको बुद्धिपूर्वक निमित्त मिलाकर उपयोगको शुद्धात्माके अनुभवमें जोड़ना पड़ता है। इसप्रकार स्वात्मानन्दमें मगन होजानेसे कर्मकी निर्जरा होती है, फिर अप्रमत्त गुणस्थानमें होकर क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान तक सहजानन्दका प्रकाश रहता है। विना प्रयत्नके सहज ही शुद्ध ध्यान होता है व सहजहीमें आनन्दका स्वाद आता है। श्रेणी पथपर चलनेसे विशेष करके क्षपकश्रेणीपर चलनेसे विशेष कर्मोंका क्षय होता है। इस कर्मके क्षयमें सहजानन्दका भोग कारण है इसीसे चारों घातीय कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान प्रगट होजाता है। शुद्धात्माका प्रत्यक्षरूप झलक जाता है। अरहन्त परमात्माका पद होजाता है तब अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य अनन्त चतुष्टय प्रगट होजाते हैं।

यह अरहन्त तेरहवे सयोग, चौदहवें अयोग गुणस्थानमें होते हैं। यहांके शुद्ध भावोंसे भी कर्मोंकी निर्जरा होती है। आयुके अन्तमें शेष अघातीय कर्म भी क्षय होजाते हैं और सिद्धपद जो अपना स्वभाव है सो प्रगट होजाता है। श्री तारण स्वामीका यह अभिप्राय है, जब आत्मानन्दका स्वाद आवे तब ही आत्मानुभव या आत्मध्यान या रत्नत्रयकी एकता रूप मोक्षमार्ग समझना चाहिये। उसी समय आत्मतल्लीनतासे जो वीतरागता होती है उसीसे कर्मोंका क्षय होता है तथा वह आनन्द जितनी २ ज्ञानकी व वीतरागताकी वृद्धि होती है उतना उतना बढ़ता जाता है। सयोग केवली अरहन्तके अनन्त सुख रूप होजाता है, फिर वह कभी मिटता नहीं है, सदा बना रहता है। वास्तवमें जैनधर्म आनन्दमई है। वर्तमानमें भी आराधकको आनन्द आता है व उसका अन्तिम फल भी अनन्त सुख है।

इष्टोपदेशमें कहा है—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जब योगी योगबलसे आत्माके स्वरूपमें तन्मय होजाता है व सर्व व्यवहारके विकल्पोंसे रहित होजाता है तब कोई अद्भुत आनन्दका स्वाद आता है। यही आनन्द निरन्तर कर्मोंके ईंधनको प्रचुरतासे जलाता है। उस समय योगीको बाहर दुःखोंकी तरफ लक्ष्य नहीं रहता है। इसलिये ध्यानमें कोई खेद अनुभवमें नहीं आता है। समयसारमें कहा है—

एदह्मि रदो णिच्च सतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि। एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खं ॥ २१९ ॥

भावार्थ—आत्माहीमें नित्य रत रहो, आत्मामें ही नित्य सन्तोष मानो, आत्मामें ही नित्य तृप्तिको पाओ तो उत्तम सुख प्राप्त होगा। योगसारमें योगेन्द्रदेव कहते हैं—

वज्जिय सयलवियप्पह परमसमाहि लहंति। जं वेदहि साणंद फुडु सो सिवसुक्ख भणंति ॥ ९६ ॥

भावार्थ—जो सर्व विकल्पोंको त्यागकर परम समाधिका लाभ करते हैं वे जिस आनन्दको भोगते हैं उसीको मोक्षका सुख कहते हैं। तत्वज्ञान तरंगिणीमें ज्ञानभूषण भट्टारक कहते हैं—

युगपज्जायते कर्म मोचनं तात्विकं सुखं। तयाच्च शुद्ध चिद्रूपे निर्विकल्पस्य योगिनः ॥ ९-१२ ॥

भावार्थ—जब योगी विकल्प रहित होकर शुद्ध चैतन्यके स्वभावमें लय होजाता है तब सच्चा सुख भी होता है, उसी समय कर्मकी निर्जरा भी होती है। ज्ञानार्णवमें शुभचन्द्रजी कहते हैं—

तस्यैवाविचलं सौख्यं तस्यैव पदमव्ययम्। तस्यैव बन्धविश्लेषः समत्वं यस्य योगिनः ॥ १२-१४ ॥

भावार्थ—जो योगी समभावमें लीन होता है उसीके निश्चल सुख है। उसीको अविनाशी पद होता है, उसीके कर्मबन्धका क्षय होता है।

(२०) व्यवहार, निश्चय, ध्रुव-ये तीन भाव।

विवहार दर्सनं न्यानं, चारित्रं सुद्ध दृष्टितं।
निश्चये सुद्ध बुद्धस्य, दिष्टते स्वातम दर्सनं ॥ ६७ ॥
आचरनं दर्सनं सारं, न्यानस्य चरन वीर्य जं।
तपाचार चारित्रं, दर्सनं सुद्धात्मनः ॥ ६८ ॥

एतत्तु भावनं कृत्वा, त्रिभंगी दल निरोधनं ।
सुद्धात्मा स्वस्वरूपेन, उक्तं च केवली जिनं ॥ ६९ ॥
जिनवानी हृदयं चिंते, जिन उक्तं जिनागामे ।
भव्यात्मा भावये नित्यं, पंथं मुक्ति श्रियं ध्रुवं ॥ ७० ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध दृष्टिन) सम्यग्दृष्टी जीवके भीतर या शुद्धात्माके अनुभवीके भीतर (विवहार) व्यवहार या भेद दृष्टिसे (दर्सनं न्यान चारित्र) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीन गुण दीखते हैं (निश्चये) निश्चय नय या अभेद दृष्टिसे (सुद्ध बुद्धस्य स्वात्मदर्सनं दिष्टतं) शुद्ध तत्वके अनुभवीके भीतर एक स्वात्मानुभव या स्वात्मदर्शन ही दिखलाई पड़ता है (दर्सनं आचरनं सारं) दर्शनाचार सार है (न्यानस्य चरन) इसी तरह ज्ञानाचार है (वीर्यस्य) इसी तरह वीर्याचार है (तपाचार चारित्रं) इसी तरह तपाचार है व चारित्राचार है। व्यवहारसे ये पांच प्रकार आचार हैं, निश्चयसे (सुद्धात्मन दर्सनं) एक शुद्धात्माका दर्शन या अनुभव सार है (एतत्तु भावन कृत्वा) इस प्रकार भावना करते२ (त्रिभङ्गी दल निरोधनं) ऊपर कहे हुए सर्व आस्रव त्रिभंगीके दल रुक जाते हैं (सुद्धात्मा स्वस्वरूपेन) शुद्धात्मा अपने स्वरूपमें ठहर जाता है (उक्त च केवली जिनं) ऐसा जिनेन्द्र केवलज्ञानीने कहा है (जिनवानी हृदय चिंते) जिनवाणीको मनमें चिंतवन करना चाहिये (जिनागमे जिन उक्तं) जिनागममें जिनेन्द्र भगवानका ही कथन है (भव्यात्मा मुक्ति श्रियं पथं ध्रुव नित्यं भावय) भव्य जीवको उचित है कि वह मोक्ष स्त्रीके इस निश्चय या ध्रुव मार्गकी नित्य भावना करें।

भावार्थ—इन चार गाथाओंमें यह बताया है कि मोक्षका मार्ग केवल स्वात्मानुभव है या स्वात्मदर्शन है जो अनुभवगम्य है। जहां नय, निक्षेप, प्रमाणका कोई विचार नहीं है वह निश्चय व्यवहार दोनोंसे परे है, इसलिये वही ध्रुव है व स्थिर है। उसकी साक्षात् प्राप्तिके लिये निश्चय नयसे आत्माके शुद्ध स्वरूपका मनन है। इस निश्चयका भी निमित्त साधक भेदरूप व्यवहार है।

व्यवहारमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षका मार्ग है, निश्चयसे एक अपना आत्मा ही है। ऐसा ही श्री नेमिचन्द्रजी महाराजने द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

सम्मद्दसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे। ववहारा णिच्चयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥ ३९ ॥

रयणत्तय ण वट्टइ अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि । तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारण आदा ॥ ४० ॥

भावार्थ—व्यवहार नयसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षका मार्ग है। निश्चयसे इन तीनोंसे पूर्ण अपना आत्मा ही मोक्षमार्ग है। रत्नत्रय आत्मा द्रव्यको छोड़कर और किसी पुद्गलादि द्रव्यमें नहीं रहते हैं इसलिये रत्नत्रयमई आत्मा ही मोक्षका कारण है। व्यवहार नयसे ही साधुके लिये पांच प्रकारका आचार मोक्षका साधन बताया है, क्योंकि यह स्वात्मानुभवकी प्राप्तिमें निमित्त कारण है।

१–दर्शनाचार—सम्यग्दर्शनका आचार यह है कि आठ अङ्ग सहित तत्वोंकी श्रद्धाको दृढ़ रक्खें व श्रद्धापूर्वक आचरण करें।

वे आठ अङ्ग हैं—(१) निःशङ्कित अङ्ग—तत्वोंमें शङ्का न रखना तथा निर्भय रहना। इस लोक भय, परलोक भय, वेदना भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय, मरण भय, व अकस्मात् भय न रखना। प्रयत्न यथायोग्य करते हुए कर्मोंके उदय पर व आत्माके अजर अमर स्वरूप पर दृढ़ रहना। (२) निःकांक्षित अङ्ग—पराधीन अतृप्तिकारक विषय सुखमें सुखपना न मानना, अतीन्द्रिय सुखको ही सुख जानना, भोगोंमें आसक्त न होना। चारित्र मोहके उदयसे गृहस्थके भोगादि भोगने पड़ते हैं। गृहस्थी उनको कर्मोदयका रोग जानकर त्यागबुद्धि रखता है, सम सुखकी ही भावना करता है। (३) निर्विचिकित्सित अंग—किसीको दुःखी रोगी देखकर घृणा नहीं करता है, कर्मोंका उदय विचारकर दयाभाव रखता है। (४) अमूढ़दृष्टि अंग—मूढ़तासे देखादेखी कोई भी अधर्मको धर्म नहीं मानता है, वीतराग विज्ञानको या उसके साधक कार्यको ही धर्म जानता है। (५) उपगूहन अंग या उपबृंहन अंग—अपने गुणोंको घटाता है, दोषोंको घटाता है, पराई निन्दाके भाव नहीं रखता है। (६) स्थितिकरण अंग—आपको व दूसरोंको मोक्षमार्ग पर स्थिर रखता है। (७) वात्सल्य अंग—धर्मात्माओंसे गौ वत्सके समान प्रीति रखता है, उनके काममें सहाई होता है। (८) प्रभावना अंग—जैनधमकी उन्नतिका उपाय करता है व जैनधममें आरूढ़ कर जीवोंका कल्याण करता है। इन आठ अंगोंका पालन करना ही दर्शनाचार है।

२–ज्ञानाचार—ज्ञानके बढानेका प्रयत्न करना। इसके भी आठ अंग हैं—

१ कालाध्ययन—ठीक उचित समयपर जिनवाणीको पढ़ना, २ शब्द शुद्धि—शब्दोंको शुद्ध पढ़ना, ३ अर्थ शुद्धि—शब्दोंका अर्थ ठीक करना, ४ उभय शुद्धि—शब्द व अर्थ दोनों शुद्ध पढ़ना, ५ विनय—

बड़े आदरसे पढ़ना, ६ बहु मान—बहुत सन्मानके साथ पढ़ना, ७ उवधान—धारण करते हुए पढ़ना, ८ अनिह्नव—अपने ज्ञानको व गुरुको न छिपाना। इन आठ बातोंको पालनेसे ज्ञानका आराधन भलेप्रकार होता है।

३–चारित्राचार—साधुके चारित्रको उत्तम प्रकारसे पालना। इसके तेरह भेद हैं। ५ महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, ५ समिति—१ ईर्या (देखके चलना), भाषा (शुद्ध वाणी बोलना), एषणा (शुद्ध आहार लेना), आदाननिक्षेपण (शास्त्रादि देखके रखना उठाना), प्रतिष्ठपना (मलमूत्र निर्जन्तु भूमिपर करना), ३ गुप्ति—मन, वचन, कायको सम्हालना, धर्ममार्गमें उपयुक्त रखना।

४–तपाचार—तपको भलेप्रकार पालना। इसके बारह भेद हैं–छः बाहरी तप—१ अनशन (उपवास), अवमोदर्य (भूखसे कम खाना), ३ वृत्तिपरिसंख्यान (भिक्षाको जाते हुए नियम लेना), ४–रस परित्याग—(दूध, दहीं, घी, तेल, लवण, मिष्ट रस इनमेंसे त्यागना) ५–विविक्तशयनासन—(एकांतमें शयन आसन करना), ६–कायक्लेश—(कायका सुख या स्वभाव मेटना)।

छः अन्तरंग तप—१–प्रायश्चित्त (दोषोंको शोधना), २–विनय (रत्नत्रयमें व धारकोंमें आदरभाव), ३–वैय्यावृत्य (धर्मात्माओंकी सेवा), ४–स्वाध्याय (स्वस्वरूपके ज्ञानका मनन), ५–व्युत्सर्ग (ममताका त्याग), ६–ध्यान। इन तपोंके कारण इच्छा निरोध होकर उपयोग ध्यानके सम्मुख होता है।

५–वीर्याचार—आत्माके बलको प्रगट करके ऊपरके चारों आचारोंको पालना, आलसी न होना, उत्साही रहना।

जिनवाणीका भलेप्रकार अभ्यास करके पांचों प्रकारके आचरणको भलेप्रकार समझ लेना चाहिये। व्यवहार पांच प्रकारके आचरणके द्वारा निश्चय चारित्र पर आरूढ होनेका उपाय रखना चाहिये। निश्चय चारित्र स्वात्मानुभव ही है। वास्तवमें आप ही साधन है, आप ही साध्य है, आपसे ही आत्मा आप ही पवित्र होता है। ज्ञानार्णवमें कहा है—

आत्मनोवात्मनात्माय स्वयमेवानुभूयते। अतोऽन्यत्रैव मा ज्ञातुं प्रयासः कार्यानिष्फलः॥ ४१–३२॥

भावार्थ—यह आत्मा आत्मामें ही आत्माके द्वारा स्वमेव अनुभव किया जाता है, आत्माको छोड़कर अपने स्थानमें आत्माके जाननेका खेद है सो निष्फल ही है।

आत्मार्थं श्रय मुंच मोहगहनं मित्रं विवेकं कुरु । वैराग्यं भज भावयस्व नियतं भेदं शरीरात्मनोः ॥
धर्म्यध्यानसुधासमुद्रकुहरे कृत्वावगाहं परं । पश्यानन्तसुखस्वभावकलितं मुक्तेर्मुखाम्भोरुहम् ॥ १–४१ ॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! तू आत्मारूपी पदार्थका ही आश्रय कर, मोहरूपी भयानक वनको छोड़, विवेकको मित्र बना, वैराग्यको भज, निश्चयसे शरीर और आत्माके भेदकी भावना कर । इसतरह धर्मध्यान रूपी अमृतके समुद्रके मध्यमें अवगाहन करके अनन्त सुखसे पूर्ण मुक्तिरूपी स्त्रीके मुखकमलको देख । मोक्षपाहुड़में श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ । कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो कोई महात्मा भयानक संसाररूपी महा समुद्रसे निकलना चाहता है उसे उचित है कि कमरूपी ईंधनको जलानेके लिये अपने शुद्धात्माको ध्यावे ।

अंतिम गाथा ।

जिन उत्तं सुद्ध तत्वार्थं, सुद्ध सम्यक्दसनं ।
किंचित् भाव उवसं च, जिन तारन मुक्ति कारनं ॥ ७१ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त सुद्ध तत्वार्थं) जिनेन्द्र भगवानने शुद्ध तत्वके स्वरूपको कहा है (सुद्ध सम्यक्दसनं) व शुद्ध सम्यग्दर्शनको बताया है (जिन तारन मुक्ति कारन किंचित् भाव उवसं च) श्री जिन तारणस्वामीने मोक्षके लाभके लिये कुछ थोड़ासा उपदेश किया है ।

भावार्थ—श्री जिन तारणस्वामीने जिनवाणीमें अपनी गाढ़ श्रद्धा प्रगट की है व यह झलकाया है कि जो कुछ मैंने लिखा है वह जिनागमके अनुसार लिखा है । जिनवाणीमें शुद्धात्मानुभवको शुद्ध सम्यग्दर्शन कहा है यही साक्षात् मोक्षका उपाय है । जो इस तत्वका अनुभव करेंगे वे मोक्षके भागी होंगे ।

इति श्री त्रिभंगीसार ग्रंथ जिन तारन विरचित समाप्तम् ।

ता० १०–१०–१९३७ ।

इति ।

ब्र० सीतल ।

५७ आस्रव त्रिभङ्गी गुणस्थानापेक्षया।

कर्मोंके आस्रवके कारण मूल भाव चार हैं—मिथ्यात्व, अविरत, कषाय, योग।

५ मिथ्यात्व—एकांत, विपरीत, संशय, अज्ञान, विनय।

१२ अविरत—पांच इंद्रिय व मनको वश न करना, छः कायोंकी दया न पालनी।

२५ कषाय—चार अनन्तानुबन्धी, चार अप्रत्याख्यान, चार प्रत्याख्यान, चार संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। ऐसे १६ कषाय और ९ नोकषाय–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

१५ योग—सत्य मन, असत्य मन, उभय मन, अनुभय मन।
=४ मन—सत्य वचन, असत्य वचन, उभय वचन, अनुभय वचन।
=४ वचन—औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्मण।
=७ काय।

१५

५७ आस्रव भाव।

गुणस्थानापेक्षा विभाग।

गुणस्थान नाम	आस्रवाभाव	कौन २	आस्रव कितने	आस्रव व्युच्छित्ति =आस्रव आगे नहीं	कौन २
१ मिथ्यात्व	२	आहारक, आहारक मिश्र	५५	५	५ मिथ्यात्व भाव आगे नहीं
२ सासादन	७	५ मिश्र + २ आहारक	५०	४	४ अनंतानुबंधी कषाय
३ मिश्र	१४	११ + औदारिक मिश्र, कार्मण, वैक्रियिक मिश्र	४३	०	
४ अविरत स०	११	५ मिश्र +४ अ०के०+२आहा०	४६	९	औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र कार्मण, ४ अप्र० कषाय + वैक्रियिक त्रस अविरत=९
५ देशविरत	२०	११ + ९	३७	१५	४ प्र० क० + ११ अविरत
६ प्रमत्त	३३	२०+१५-आहारक २=३३	२४	२	आहारक, आहारक मिश्र
७ अप्रमत्त	३५	३३ + २	२२	०	
८ अपूर्व०	३५	...	२२	६	हास्यादि ६ नोकषाय
९ अनिवृत्ति०	४१	३५ + ६	१६	६	३ वेद + ३ कषाय लोभ विना
१० सूक्ष्म०	४७	४१ + ६	१०	१	लोभ
११ उपशात मोह	४८	४७ + १	९	०	
१२ क्षीण मोह	४८		९	४	असत्य, उभय मन वचनके ४
१३ सयोगकेवली	५०	५२—औदारिक मिश्र व कार्मण	७	७	२ मन + २ वचन + ३ काय औदारिक २ व कार्मण
१४ अयोग ,,	५७	०	०	०	

हिन्दी टीकाकारकी प्रशस्ति ।

दोहा ।

मङ्गल श्री अरहन्त है, मङ्गल सिद्ध महान । आचारज उवझाय मुनि, मङ्गलमय सुखदान ॥ १ ॥
युक्त प्रांत लखनौ नगर, अग्रवाल कुल जान । मङ्गलसेन महा गुणी, जिनधर्मी मतिमान ॥ २ ॥
जिन सुत मक्खनलालजी, गृही धर्म लवलीन। तृतीय पुत्र सीतल यही जैनागम रुचि कीन ॥ ३ ॥
विक्रम उन्निस पैतिसे, जन्म सु कार्तिक मास । बत्तिस वय अनुमानमें, घरसे भये उदास ॥ ४ ॥
श्रावक धर्म सम्हालते, विहरे भारत ग्राम। उन्निससै तैरानवे, दाहोदे विश्राम ॥ ५ ॥
शत घर जैन दिगम्बरी, दसा हूमड़ जाति । त्रय मंदिर उत्तम लसैं, शिखरबंद बहु भांति ॥ ६ ॥
नशियां लसत सुहावनी, शाला बाला बाल। संतोषचंद जीतमल, लूणजी चुन्नीलाल ॥ ७ ॥
सूरजमल और राजमल, उच्छवलाल सुजान । पन्नालाल चर्तुभुज, आदि धर्मिजन जान ॥ ८ ॥
सुखसे वर्षा कालमें, ठहरा शाला धर्म । ग्रन्थ कियो पूरण यहां, मंगल दायक पर्म ॥ ९ ॥
वीर चौवीस त्रेसठे, आश्विन सुदि छठ जान। रवि दिन टीका पूर्ण की, धर मनमें जिन ध्यान ॥ १० ॥
तारण स्वामी बहु गुणी, श्री जिनके सत भक्त। सार त्रिभंगी ग्रन्थमें, लिखो तत्व परमत्थ ॥ ११ ॥
स्वामी चरण प्रसादसे, भाव शब्द पहचान। अल्प बुद्धिसे लिख दियो, होवे जन कल्याण ॥ १२ ॥
विद्वानोंसे प्रार्थना, भूल चूक जो होय। क्षमा करै सोधै तुरत, तत्वसार अवलोय ॥ १३ ॥

दाहोद (पंचमहाल)
१०-१०-१९३७

ब्रह्मचारी सीतल ।

श्री तारणस्वामी विरचित-

त्रिभंगीसार।

समाप्त।